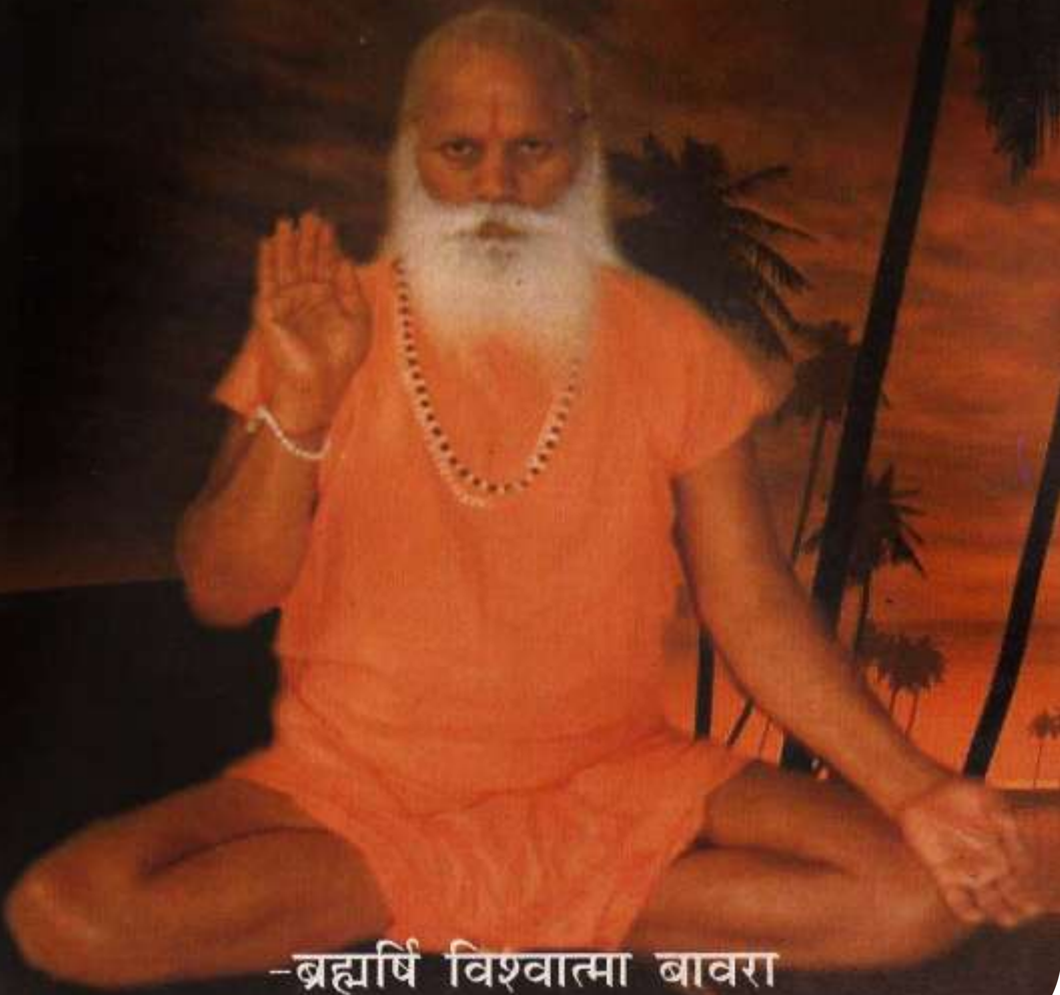
# जन्म से मोक्ष तक



-ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

प्रकाशक :
दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम,
विराट नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन :-01733-266170



संकलिता :- ज्ञानेश्वरी परिव्राजिका
सम्पादन :- ब्रह्मऋता परिव्राजिका

शब्द संयोजन :- *अमित शर्मा*

प्रथम संस्करण :- माघ कृष्ण नवमी
17 जनवरी 2004

प्रतियाँ :- 2100

मूल्य :- 20/-

मुद्रक :-दी प्रैस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

# दो शब्द

'जन्म से मोक्ष तक' लघु पुस्तिका परम पूज्य गुरुदेव ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा जी महाराज द्वारा हालैण्ड निवासियों को मई 2000 में दिये गये सन्देश का संग्रह है। पूज्य गुरुदेव ने तीन प्रवचनों में जन्म-मृत्यु-मोक्ष के रहस्य को उद्घाटित करते हुए सही जीने का ढंग मानव मात्र का समझाया है। एक बार पढ़ने पर पाठक इसे बार-बार पढ़ना चाहेंगे। श्वास लेना वा अपने लिए जीना ही जीवन नहीं और मोक्ष मृत्यु के पश्चात् की अवस्था वा किसी लोक विशेष का नाम नहीं अपितु जीवन की पूर्णता का नाम मोक्ष है जिसे जीते जी प्राप्त किया जा सकता है। यही भाव आप पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों में पढ़ेंगे इस पुस्तिका में।

इन प्रवचनों का संकलन हमारी प्रिय ज्ञानेश्वरी ने बड़े परिश्रम से किया है और उनके इस कार्य में सहयोग दिया जबलपुर निवासी मिशन के कर्मठ कार्यकर्ता रविशंकर शर्मा ने। प्रभु इन्हें और सामर्थ्य और शक्ति दें जिससे सद्विचारों के प्रचार और प्रसार में इनका सहयोग इसी प्रकार प्राप्त होता रहे।

ये तीन रत्नों का संग्रह पूज्य गुरुदेव के जयन्ती समारोह पर उनके पावन श्री चरणों में भेंट करते हुए उनसे यही प्रार्थना है कि वह हमें इतनी शक्ति दें जिससे उनका कार्य अन्तिम श्वास तक होता रहे। बार-बार श्री चरणों में प्रणाम करते हुए यह पुस्तिका उन्हीं को सप्रेम समर्पित है-

**-ब्रह्मऋता परिव्राजिका**
प्रचारिका
इन्टरनेशनल ब्रह्मर्षि मिशन

# जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओं!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आंतरिक शुभ कामना। यहाँ मेरे इस सत्संग का पहला विषय है जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। दूसरा विषय है मृत्यु के बाद और तीसरा विषय है मुक्ति। ये तीनों विषय दर्शनशास्त्र के हैं और मैं ऐसा समझता हूँ कि बहुत कम लोग ऐसे हैं जो दर्शनशास्त्र के सूक्ष्म विषयों को ग्रहण कर पाते हैं लेकिन फिर भी मैं कोशिश करूँगा सरल से सरल ढंग से समझाने की।

आज का पहला विषय है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय क्या है? इसके विषय में हमारे यहाँ जो उपनिषद् ग्रंथ हैं जिनको हम वेदांत कहते हैं, उनमें एक स्वतंत्र ग्रंथ है जिसको हम कहते हैं-माण्डूक्योपनिषद्। मेरी उस उपनिषद् पर commentary है। बड़े विस्तार के साथ मैंने उसे अमेरिका के शिष्यों को पढ़ाया है क्योंकि भारतीय दर्शन यह मानता है, वैदिक विज्ञान यह मानता है कि 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'-जो कुछ इस पिण्ड में है अर्थात् मनुष्य के शरीर में है, वही इस ब्रह्माण्ड में है। विज्ञान की भाषा में ब्रह्माण्ड को मैक्रोकॉज़्म और पिण्ड को माइक्रोकॉज़्म कहते हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य का शरीर इस ब्रह्माण्ड का

मॉडल है। जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में है वही मनुष्य के शरीर में है और जो ब्रह्माण्ड में हो रहा है वही मनुष्य के शरीर में भी हो रहा है। उस में बड़ी मात्रा में हो रहा है और इसमें छोटी मात्रा में हो रहा है। जितने सृष्टि के तत्त्व इस ब्रह्माण्ड में हैं वे सभी तत्त्व मनुष्य के शरीर में विद्यमान हैं इसलिए हमारे ऋषियों ने बताया कि यदि तुम परमात्मा को, ब्रह्म को जानना चाहते हो तो सबसे पहले तुम स्वयं को जान लो। यदि तुम अपने को नहीं जाने तो तुम परमात्मा को नहीं जान सकते क्योंकि परमात्मा का जो सबसे निकट स्वरूप है वह आपकी अपनी आत्मा है। आपकी जो आत्मा है वह परमात्मा की ही एक ज्योति है, परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है।

जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से अलग नहीं हैं उसी प्रकार से आपकी आत्मा परमात्मा से अलग नहीं है इसलिए यदि आपको अपने को जानना है तो अपने आप को अन्तर्मुखी करना पड़ेगा और आपकी जो दैनिक तीन अवस्थाएँ हैं-सतोगुण की अवस्था, रजोगुण की अवस्था और तमोगुण की अवस्था, इन तीनों गुणों के प्रकाश में ये तीन प्रक्रियाएँ चलती हैं। सतोगुण के प्रकाश में आप जाग्रत अवस्था में आ जाते हैं, रजोगुण के प्रकाश में आप स्वप्नावस्था में चले जाते हैं और तमोगुण की अवस्था में आप घोर निद्रा में चले जाते हैं। जिस समय आप घोर निद्रा में जाते हैं वह तमोगुण की अवस्था होती है इसीलिए आपको उस समय कुछ नहीं सूझता, आपको अपना भी पता नहीं रहता। तमोगुण का परिणाम है अज्ञान, मोह और अंधकार। भगवान् ने गीता के चौदहवें अध्याय में यह बात समझाई -

**सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।**
**प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।**

(गीता 14/17)

तमोगुण के परिणाम होते हैं-प्रमाद, मोह, अज्ञान और अन्धकार। तमोगुण जब थोड़ी मात्रा में होता है तो वहाँ पर प्रमाद आता है और जब घोर अवस्था में आता है तो अज्ञान आता है, उस अवस्था में कुछ नहीं सूझता। ये आप के जो चित्त की अवस्थायें हैं गुणों के अनुसार हैं। यदि आपके चित्त में सतोगुण का प्रकाश हो तो आप जाग्रत अवस्था में रहते हैं। जाग्रत अवस्था के भी कई भेद हैं, एक सी जाग्रत अवस्था नहीं होती। आप इन्द्रियों के माध्यम से जाग्रत हैं, मन के माध्यम से जाग्रत हैं या बुद्धि के माध्यम से जाग्रत हैं? बुद्धि आपकी सजग है, जागरूक है, मन आपका सजग है, जागरूक है या केवल इन्द्रियाँ आपकी जाग रही हैं? बहुत से लोग ऐसे हैं जिनकी केवल इन्द्रियाँ जागती हैं, मन, बुद्धि उनकी जाग्रत अवस्था में नहीं हैं इसलिए वे अज्ञान की अवस्था में ही गिरे रहते हैं। वे शरीर के अतिरिक्त कुछ नहीं देखते, अपने पेट और परिवार के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ और शरीर जाग रहा है। इन्द्रियों से सम्बन्धित जितना संसार है उसको ही वे पहचानते हैं। इन्द्रियों से अधिक जो संसार है उसको वे नहीं जान पाते। ये पशु पक्षी हैं इनको देखिये-गाय अपने बच्चे को बहुत प्यार करती है इसलिए गाय के बच्चे को वत्स कहते हैं और वत्सलता गऊ का ही पर्याय बना हुआ है। भगवान् को भी भक्त-वत्सल कहते हैं अर्थात् जैसे गाय अपने बच्चे को प्यार करती है ऐसे ही भगवान् भी अपने भक्त को प्यार करते हैं। अब आप लोग यह समझिये कि जो गाय अपने बच्चे को इतना प्यार करती है उसी के सामने यदि हरा चारा डाल दिया जाये तो क्या आप यह सोचते हैं कि गाय यह चाहेगी कि पहले बछड़ा खा ले, तब वह खायेगी? ऐसा नहीं होता, कभी-कभी तो हमने देखा है कि गाय अपने बछड़े के मुँह से छीन कर हरा चारा खा लेती है। प्यार बहुत करती है बच्चे को लेकिन पशु योनि में होने के कारण

तमोगुण प्रधान है। तमोगुण होने के नाते पहले उसका पेट है और बछड़ा बाद में है। हालांकि बछड़े के लिए तड़पती है वह लेकिन भोजन के समय बछड़े को याद नहीं करती। यह है स्थिति। जो मनुष्य घोर तमोगुण में पड़ा हुआ होता है वह परिवार की या समाज की चिंता नहीं करता, वह केवल अपनी चिंता करता है। परिवार सुखी है या दुःखी है, इससे उसको कुछ लेना-देना नहीं। क्या आप लोग जानते नहीं कि जो मेहनत करके कमाते हैं और शराब में, जुए में सब उड़ा देते हैं, बच्चे घर में दुःखी होते हैं, स्त्री घर में रोती है लेकिन वे कोई चिंता नहीं करते। क्यों नहीं करते? इसलिए कि वे पशुता का जीवन जी रहे हैं। वे अपनी इन्द्रियों से आगे नहीं बढ़े हैं, अपने शरीर से आगे नहीं बढ़े। जाग्रत अवस्था में तो हैं लेकिन केवल उनका शरीर और इन्द्रियाँ जाग रही हैं, उनका मन नहीं जगा है अभी। बुद्धि नहीं जगी है। यदि मन जगा हो तो कभी ऐसा दुष्कर्म नहीं करेंगे। फिर तो उनके लिए भी सोचेंगे जो उनके साथ हैं, उनके सहायक हैं। उनकी चिंता पहले करेंगे, अपनी चिंता बाद में करेंगे। जिसका मन जाग जाता है, वह अपनी चिंता नहीं करता, वह पहले अपने सम्बन्ध की चिंता करता है और जिसकी बुद्धि जाग गई हो, वह तो सारे विश्व की चिंता करने लगता है। वह सोचता है कि पहले विश्व का कल्याण हो तब मेरा कल्याण हो। तो जागने के भी कई स्तर हैं। एक इससे भी ऊँची अवस्था है जो जाग्रत में आती तो है लेकिन उसको तुरीयावस्था कहते हैं जिसमें यह जीव सारे प्राणियों के हित का चिन्तन करने लगता है जिसके लिए भगवान् ने गीता के पाँचवें अध्याय में कहा-

**छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।**

वह प्राणिमात्र के हित में लग जाता है क्योंकि उसकी आत्मा जाग्रत हो जाती है। आत्मरूप में उसने अनुभव कर लिया है-

**यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।**
**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।**

(ईशा० 1/7)

वह मोह और शोक से मुक्त हो गया है, एकत्व का दर्शन कर रहा है इसलिए अब उसके सोने के लिए कहीं स्थान नहीं है। गीता के दूसरे अध्याय में भगवान् ने कहा कि जिस अवस्था में ये संसार के लोग जागते हैं, उसमें संयमी सोता है और जिसमें संयमी जागता है उसमें ये सारे संसार के लोग सोये रहते हैं। वहाँ जागने का अभिप्राय क्या है? जागने का अभिप्राय है कि उसकी आत्मा जाग्रत हो गयी है। आत्मा प्रसुप्तावस्था में नहीं है, बुद्धि प्रसुप्तावस्था में नहीं है। आत्मा के जागते ही बुद्धि, इन्द्रियाँ सब जाग जाती हैं लेकिन यदि शरीर जाग गया, इन्द्रियाँ जाग गईं तो मन भी जाग जाये, ऐसा नहीं होता, बुद्धि भी जाग जाये ऐसा नहीं होता, आत्मा भी जाग्रत अवस्था में आ जाये, ऐसा नहीं होता। जाग्रत अवस्था जो है यह कोई सामान्य अवस्था नहीं है। यहाँ पर वेद में निर्देश है-

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**
**क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।**

(कठ०1/3-14 )

यह वेद का मन्त्र है, उसमें यह बताया गया है मनुष्य के लिए कि उठो, जागो। कहा-जाग कर क्या करो? कहा- **प्राप्यवरान्निबोधत**-किसी श्रेष्ठ पुरुष के पास जाओ, महापुरुषों के पास जाओ, उनके चरणों में बैठ कर ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान के लिए क्या कहा गया? कहा- **क्षुरस्य धारा**----छुरे की धार के समान तीखी है वह। **दुर्गं पथ स्तत्कवयो वदन्ति**- कवि लोग कहते हैं कि यह मार्ग बहुत कठिन है लेकिन यह मार्ग भी तो तुम्हारे लिए ही है, तुम मनुष्य हो। पशुओं के लिए कठिन मार्ग थोड़े

ही है? वेद का जो यह निर्देश है जागने का, यह आत्मा की जागृति का निर्देश है। इसी रूप से गीता के दूसरे अध्याय के अन्त में बौद्धिक जागृति का संदेश है।

मैं आपको बता रहा था कि जहाँ पर जाग्रत अवस्था का प्रश्न आता है वहाँ पर किस अवस्था में आप जाग्रत हैं? शारीरिक स्थिति में आप जाग्रत हैं, इन्द्रियों की स्थिति में आप जाग्रत हैं, मन की स्थिति में आप जाग्रत हैं, आपकी बुद्धि जाग्रत हो गई है या आपकी आत्मा जग गई है? आत्मा जग जायेगी तो उसका क्या लक्षण होगा? आत्मा जब जग जाती है तो सारे विश्व में अपनी आत्मा के सिवाय और कुछ दिखाई नहीं देता। बुद्धि जब जाग्रत हो जाती है तो सारा स्वार्थ सदा के लिए समाप्त हो जाता है और वह लोकहित में अपने आप को समर्पित कर देता है। मन जब जाग्रत हो जाता है तो उस अवस्था में वह अपनी चिन्ता नहीं करता। वह किसकी चिन्ता करता है? वह अर्जुन की तरह चिन्ता करता है

**येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।**
**त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।**

(गीता 1/33)

अर्जुन की बुद्धि अभी सोई हुई है लेकिन मन जगा है इसलिए वह कहता है कि हे प्रभो! जिसके लिए मैं सुख चाहता हूँ, जिसके लिए मैं भोग और राज्य चाहता हूँ , वे तो सारे यहाँ मरने के लिए आये हैं यानी मेरे शरीर के, मेरे इन्द्रियों के सारे सम्बन्धी, मेरे ताऊ, मेरे पितामह, मेरे सारे रिश्तेदार-**श्यालासम्बन्धिनस्तथा**-मेरे ससुर, मेरे साले, मेरे भाई, ये सभी अपने धन की चाह छोड़ करके प्राण की चाह छोड़ कर यहाँ मरने के लिए खड़े हैं इसलिए हे कृष्ण! मुझे राज्य नहीं चाहिए, मुझे सुख नहीं चाहिए, मुझे विजय नहीं चाहिए। क्यों नहीं चाहिए? वह कहता है-

**किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।**

(गीता 1/32)

हे गोविन्द ! मुझे इस राज्य और भोग से क्या लेना देना है जहाँ मेरा परिवार ही नहीं रहेगा, मेरे सम्बन्धी ही नहीं रहेंगे। इसे बौद्धिक जागृति नहीं कहते। आगे चल कर के दूसरे अध्याय के अन्त में बौद्धिक जागृति के लिए भगवान् उसे उपदेश देते हैं। जब तुम्हारी बौद्धिक जागृति हो जायेगी तब तुम्हें समझ में आ जायेगा कि जिन के लिए तू रो रहा है इनका तुम्हारे से कितना सम्बन्ध है। मेरे कहने का अभिप्राय कि जाग्रत अवस्था के चार स्तर हैं। तीन स्तर सामान्य हैं और एक स्तर विशिष्ट है। विशिष्ट स्तर है आत्मा की जागृति लेकिन इन्द्रियों की जागृति, मन की जागृति, बुद्धि की जागृति, इन तीन की जागृति सामान्य है। आम सामान्य जनता जब जगती है तो इन्द्रियों के स्तर पर जगती है। उसका जाग्रत स्तर इन्द्रियों तक है। इससे ज्यादा नहीं जगती। किसी-किसी का मानसिक स्तर जग जाता है। कोई विरले हैं जिनका बौद्धिक स्तर जगता है अर्थात् जो बौद्धिक रूप में जग जाते हैं और बहुत कम ऐसे हैं जिनके लिए भगवान ने कहा-

**मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।**
**यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।**

(गीता 7/3)

हज़ारों में कोई एक ऐसा होता है जो आत्मिक जागृति के लिए प्रयत्न करता है, उसमें भी हज़ारों में कोई एक आत्मिक रूप से जाग्रत हो जाता है। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि जाग्रत शब्द अपने आप में बहुत बड़ी सम्भावनाओं को समेटे हुए है। आँख खुल गई, आप जग गये तो यह न सोच लेना कि आप सही में जग गये। यदि आदमी इसी

प्रकार से जग जाये और उसी को जागना कहें तो फिर उसे ज्ञान-विज्ञान की आवश्यकता ही कहाँ पड़ेगी? फिर उसे शिक्षा की क्या आवश्यकता पड़ेगी? आप जरा सोचिये कि आप जिसको शिक्षित करते हो, अनेक प्रकार के उपदेश देते हो, किस अवस्था में जाग्रत करते हो उसे? हम लोग जो बारह महीने घूम रहे हैं उसमें हमारा personal cause तो कुछ नहीं है, फिर किस लिए घूम रहे हैं, किसको जगाने के लिए घूम रहे हैं? आप सब तो जगे हुए ही बैठे हो, फिर हमारे उपदेश की क्या ज़रूरत है? लेकिन नहीं, आप शरीर की दृष्टि से जाग्रत हैं, इन्द्रियों की दृष्टि से जाग्रत हैं, क्या मन की दृष्टि से भी जाग्रत हैं आप? क्या बौद्धिक स्तर पर भी आप जाग्रत हैं, क्या आपकी आत्मा जग गई है? यदि ऐसा होता तो आज समाज की यह दुर्गति न होती। यदि समाज के सारे लोग बौद्धिक स्तर पर जग जायें तो समाज में न तो कहीं दुःख होगा, न कहीं पीड़ा होगी, न कहीं crime होगा, यह सब कुछ नहीं रहेगा।

अभी परसों की बात है इंग्लैड में कैदियों के लिए एक रिकार्डिंग थी। उसमें एक वैज्ञानिक था, एक मेरी शिष्या थी, एक प्रोफेसर था और एक समाज सेवी था। वहां पर यह चर्चा का विषय था कि समाज में crime क्यों है? क्या इसका निदान कोई हो सकता है? तो मैंने उन लोगों से कहा कि अपराध का कारण है अज्ञान व nescience. Uncontrolled emotion is the root cause of crime and how one can control it? इसके लिए तो उसे बौद्धिक रूप से जागृति की आवश्यकता पड़ेगी। यदि बौद्धिक रूप से जाग जाये तो crime नहीं करेगा। emotion में आकर करके लोग अन्याय करते हैं। अभाव से पीड़ित हो करके लोग अन्याय करते हैं। अभाव की अनुभूति अज्ञानता में होती है। यदि ज्ञान का प्रकाश हो जाये तो अभाव है

ही नहीं कहीं। लोग यथार्थ से अनभिज्ञ हैं इसलिए वे अन्याय में प्रवृत्त होते हैं। क्या आप लोग नहीं जानते कि आप की योग्यता और सामर्थ्य के सृजन में समाज का कितना बड़ा सहयोग है? नहीं जानते। कभी किसी ने ध्यान नहीं दिया। किसी से पूछिये कि आप में इतनी योग्यता आई तो इसमें मूल कारण कौन है? तो वह बतायेगा कि हमारे माता-पिता ने हमें पढ़ाया, हमारी परवरिश की, हमने मेहनत की और योग्य बन गये लेकिन उसका यह विचार बिल्कुल मिथ्या है, भ्रान्तिपूर्ण है, अज्ञानता से परिपूर्ण है। याद रखो! मनुष्य की योग्यता के निर्माण में देश के हर एक व्यक्ति का सहयोग है। यहाँ तक कि वह किसान जो खेत में खेती कर रहा है, वह व्यक्ति जो किसी खदान में काम कर रहा है, वह व्यक्ति जो किसी कारखाने में काम कर रहा है, जो जहाँ काम कर रहा है, उसका सहयोग मिल रहा है आपको।

एक सज्जन लंडन से पढ़कर आये भारत में। वहाँ पर एक ऑफिसर बने, दैवयोग से मेरे शिष्य हो गये वह। उनके यहाँ एक दिन बैठा हुआ था तो उन्होंने मेरे से कहा कि गुरु जी आप एक बात कहते हो जो मेरे समझ में नहीं आती। मैंने कहा कि कौन सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती। उसने कहा कि आप कहते हो कि हमारे में जो योग्यता और सामर्थ्य है यह समाज की देन है, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। कहा-देखिये कि मेरे पिता ने फीस देकर पढ़ाया, हमने मेहनत की और पढ़ाई की। हमारे पिता ने इतने पैसे देकर के हमें इंगलैंड भेजा, हम वहाँ से पढ़कर डिग्री लेकर आये, हमारी योग्यता के अनुसार हमें सर्विस मिल गयी है, सर्विस के अनुसार हमें पेमेंट मिलती है जिसमें से हम कुछ खाते हैं, कुछ बचाते हैं इसलिए हमने एक कार रख रखी है, एक कोठी बना रखी है, आराम से जिंदगी जी रहे हैं। बताओ इसमें समाज ने हमें क्या दिया है?

मैंने उससे पूछा कि जिस पाठशाला में तुम पढ़ने गये थे, उसे तुम्हारे पिता जी ने बनवाया था? बोला नहीं। मैंने कहा-जिस कालेज में तुम पढ़े थे वह तुम्हारे पिता ने बनवाया था? बोले नहीं। जिस university में तुम पढ़े थे वह तुम्हारे पिता ने बनवाया था? बोले नहीं। हम कहा कि तुम्हारे पिता जी की फीस से वह university बन गई थी? बोले नहीं। हम कहा कि तुम्हारे पिता जी करते क्या थे? बोले कि officeमें superintendent थे। मैंने उसे पूछा कि तुम जो अन्न खाते हो वह तुम्हारे पिता की कलम से निकलता है, बोले नहीं, किसान के यहाँ से आता है। हमने कहा कि क्या अन्न की कीमत पैसा हो सकता है?' ज़रा कल्पना करो। पैसे से अन्न नहीं होता। यह तो समाज की व्यवस्था है तुम्हें पैसे लेकर अन्न लेने की विनमय की व्यवस्था सरकार ने कर दी है लेकिन जिस कागज का तुम प्रयोग करते हो वह तुम्हारे पिता जी द्वारा निर्मित नहीं है। जिस कलम का तुम प्रयोग करते हो वह तुम्हारे पिता जी ने नहीं बनाया है। तुम्हारे जीवन में जिन-जिन पदार्थों का प्रयोग होता है, वे समाज की देन हैं और तुम कहो कि हम पैसे से लेते हैं तो यह तुम्हारी भ्रान्ति है। यह तो एक व्यवस्था है। पहले समाज ने सरकार बनाई, सरकार ने व्यवस्था दी कि तुम इस प्रकार से क्रय-विक्रय कर सकते हो लेकिन बिना समाज के सहयोग के तुम एक अक्षर न लिख सकते हो, न पढ़ सकते हो, न जान सकते हो। मैंने उससे पूछा कि जो ज्ञान अब तक तुम्हें मिला है वह वैदिक काल से लेकर अब तक के विद्वानों की देन है। वह तुम्हारे पिताजी की कलम से नहीं निकला है। वह ज्ञान तुम खरीद नहीं सकते हो। पुस्तक तुम खरीद सकते हो लेकिन पुस्तक के अन्दर जो ज्ञान है वह तुम नहीं खरीद सकते। क्या उनके प्रति कभी भी पूर्ण रूप से कृतज्ञ हो सकते हो यदि उनको स्वीकार न करो तो? वह कहता है कि यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं। हमने कहा

कि यही तो मैं कहता हूँ कि तुम्हारी इन्द्रियाँ जाग्रत हैं लेकिन तुम्हारी बुद्धि अभी जाग्रत नहीं है। जिस दिन बुद्धि जाग्रत हो जायेगी उस दिन तुम यह सोचने लगोगे कि हमारे जीवन के निर्माण में किन-2 लोगों का सहयोग है और जिन लोगों ने तुम्हारे जीवन के निर्माण में सहयोग दिया है, ये सब तुम्हारे लिए तुम्हारी कृतज्ञता के पात्र हैं। उनके प्रति यदि तुम कृतज्ञ नहीं होते तो तुम कृतघ्न होते हो। भगवान् ने यही बात गीता के तीसरे अध्याय में कही -

**इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।**
**तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।।**

(गीता 3/12)

कहा कि तुम्हारे इस प्रयत्न में उन दैवी शक्तियों का जिनको तुम नहीं जानते उनका सहयोग है। ये सारे जो तुम्हें देते हैं, ये देवता हैं और यदि इन सभी का, जिनका तुम्हारे जीवन में सहयोग है, अकेले प्रयोग करते हो तो तुम चोर हो, चोरी करते हो और जो चोर है वह दण्ड का भागी बनता है। यहाँ दण्ड नहीं मिलेगा तो उस दरबार में तो दण्ड मिलेगा ही इसलिए याद रखो, जाग्रत अवस्था केवल आँख खुल जाने का नाम नहीं है। जब तक आपकी बुद्धि जाग्रत न हो जाये, जब तक आपका मन जाग्रत न हो जाये, जब तक आपकी आत्मा जाग्रत न हो जाये तब तक यथार्थ बोध नहीं हो पायेगा।

अब आइये स्वप्न पर। स्वप्न के दो रूप हैं-एक तो वह जब सो जाते हैं तब देखते हैं और यह स्वप्न आपकी भ्रान्ति पर प्रतिष्ठित है लेकिन एक सपना और है जब आप आत्मिक रूप से जग जायेंगे तब संसार की यथार्थता का आपको पता चलेगा और तब आप समझेंगे कि अब तक मैं जो देख रहा था, वह स्वप्नवत् था। जैसे स्वप्न में देखते हैं

सब कुछ लेकिन बाद में पता चलता है तो कुछ नहीं मिलता, यह तो आप जानते हैं न? स्वप्न में आप सोये होते हैं बिस्तर पर लेकिन आप चलते हैं, बोलते हैं, खाते हैं, मित्रों से बातचीत करते हैं, हिसाब-किताब करते हैं। स्वप्न में क्या नहीं करते? जो कुछ जाग्रत अवस्था में कर रहे हैं सब कुछ स्वप्न में आप करते हैं। स्वप्न में आप बीमार भी हो जाते हैं, स्वप्न में accident भी हो जाता है, स्वप्न में कभी-कभी आप डूबने भी लगते हैं, स्वप्न में आग लग जाती है लेकिन जब आप की आँख खुलती है तो पता चलता है कि वह तो सारी कल्पना थी, यथार्थ नहीं था। इसी रूप से जब तक आप बौद्धिक स्तर पर जगे नहीं हैं तब तक ये संसार का सारा रूप आपको स्वप्न दिखाई देता है। जैसे स्वप्न देखने वाले को यह नहीं लगता कि वह स्वप्न देख रहा है, उसे तो यही लगता है न कि सब सत्य है। जब जागता है तब स्वप्न को स्वप्न कहता है। इसी रूप से यह जीव जब बौद्धिक स्तर पर जाग जाता है तो उसे पता चलता है कि यह जो संसार मैं देख रहा हूँ इस रूप में यह यथार्थ नहीं है। किसी वैज्ञानिक से पूछिये कि यह मकान किस चीज़ का बना है तो वह कहेगा energy का लेकिन energy नहीं दिखाई दे रही, ईंट दिखाई दे रही है। शास्त्रकारों ने लिखा है कि जिसने इस सत्य को जान लिया है, उसके लिए संसार स्वप्नवत् है। भगवान् शंकर पार्वती को बता रहे हैं कि हे देवी-

**उमा कहऊँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना।**

मैं दृष्टि की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं तुम्हें अपना अनुभव बता रहा हूँ। सत्य तो भगवान् की उपासना है। भजन माने माला फेरना नहीं होता, भजन माने सेवा। व्याकरण की दृष्टि से भज् धातु सेवा के लिए प्रयोग होती है। तो सत्य क्या है? कहा-परमात्मा की आराधना, परमात्मा की सेवा। इस जगत् में जितना व्यवहार तुम कर रहे हो, जब तुम्हारी

आँख खुल जायेगी तो यह लगेगा कि सब व्यर्थ किया। संसार में ही देखिये कि जिसको आप बहुत प्यार करते हैं और कभी उसका स्वार्थ आपसे पूरा नहीं होता और आप को लात मार कर के वह चला जाता है या चली जाती है। फिर आप सोचते हो कि वह जो आप प्यार कर रहे थे वह न तो वहाँ सत्य था न यहाँ सत्य है। क्या था वह? फिर कहेंगे कि वह तो सपना जैसा था, व्यर्थ का था, कल्पना थी सब। सपना माने कि जो दिखाई दे और सत्य न हो। जो दिखाई तो दे लेकिन यथार्थ न हो उसे सपना कहते हैं क्योंकि सपने में जो कुछ दिखाई देता है वह यथार्थ नहीं होता। सपने में आप गाँव देखते हैं वह यथार्थ नहीं है, सपने में आप अग्नि देखते हैं वह यथार्थ नहीं है। सपने में आप समुद्र देखते हैं वह यथार्थ नहीं है। तुलसीदास जी ने लिखा है-

**सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै।**
**कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै।।**

(वि० प० 121/3)

कहा-एक व्यक्ति ने सपने में देखा कि मानो मैं जहाज में बैठ कर समुद्र में जा रहा हूँ और देख लिया कि समुद्र में तूफान आया और जहाज डूब रहा है और सपने में ही चिल्ला रहा है। अब तुलसीदास जी कहते हैं कि करोड़ों नाव उसको बचाने के लिए वहाँ छोड़ दी जायें तो क्या उसका दुःख दूर हो जायेगा नहीं होगा। वह डूबने के भय से बच जायेगा? कहा कि नहीं बचेगा। इतने में आँख खुल गई और देखा कि मैं तो यहाँ सो रहा हूँ, वह तो सपना था। तो जो दिखाई दे और हो नहीं, उसे सपना कहते हैं। क्या आप समझते हो कि जो यह सारा दृश्य दिखाई दे रहा है यह सब सत्य है? बौद्धिक स्तर पर देखिये आप। आप को पता चलेगा कि बुद्धि स्वप्न नहीं देखती, स्वप्न मन देखता है। स्वप्न का जो जगत् है वह मन

का संसार है। बौद्धिक संसार नहीं है, बौद्धिक संसार में उसके लिए स्थान नहीं है। वह मानसिक संसार है और इन्द्रियों के द्वारा जो देखा जाता है वह आपका स्थूल संसार है। जब आप इस स्थूल संसार से मन के संसार में जाते हैं तो इसका पता नहीं चलता और जब मन के संसार से आप बुद्धि के संसार में जाते हैं, इसका पता नहीं चलता इसलिए यह स्वप्नावस्था भी दो प्रकार की है- एक वह है जब आप सोते हैं और तमोगुण में रजोगुण आ जाता है और रजोगुण में आप स्वप्न देखते हैं और दूसरी अवस्था में जिसे आप जाग्रत कहते हैं, इसी में आप स्वप्न देख रहे हैं। यह जागते हुए का सपना है। आप को कहीं धक्का लगता है तब आप को होश आती है तो पता चलता है कि उसने आपको झूठा प्यार दिखाया और आपने इसे सत्य मान लिया था। तो जो देखने में सत्य लगता है पर है मिथ्या, उसे स्वप्न कहते हैं। संसार भी एक सपना है-जगत सब सपना। आगे एक चौपाई में तुलसीदास जी ने कहा-

**जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुःख होई।**
**जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई।।**

(रा० 1/118-1)

कहा-जैसे सपने में कोई किसी का सिर काट ले और सिर कटने पर वह रो रहा है। भला पूछो कि किसी का सिर कट जाय तो वह रोयेगा? रोने वाला ही नहीं रहेगा तो रोयेगा कौन? रोते-रोते आँख खुल गई तो देखा सिर तो है, कटा नहीं। यह जो है यह जागृति है। इसी प्रकार से उन्होंने एक जगह और सपने का उदाहरण दिया। जिस समय लक्ष्मण केवट को उपदेश दे रहे हैं अयोध्या काण्ड में तो वहाँ पर उन्होंने यह बात समझाई-

**सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।**

**जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोई।।**

(रा० 2/92)

कहा कि स्वप्न में राजा ने देखा कि वह भिखारी बन गया लेकिन जब जगा तो वह भिखारी नहीं राजा था। एक और कहानी मैंने पढ़ी-एक भिखारी था, एक दरवाज़े पर जाकर उसने आवाज़ लगाई-भिक्षां देहि। देवी घर में काम कर रही थी, उसने आवाज़ दी कि बाबा, ज़रा रुक जाओ, बैठ जाओ, अभी भिक्षा लेकर आ रही हूँ। वह भिखारी सामने एक बैंच पड़ा था उस पर बैठ गया। थका हुआ था, सो गया। सोने पर स्वप्न देखने लगा। देखा कि एक देश का राजा मर गया है और वहाँ के नये राजा का चुनाव हो रहा है जिसके लिए बाज उड़ाया जा रहा है और वह भी जाकर उस भीड़ में खड़ा हो गया। उसने देखा कि बाज उड़ते-उड़ते आया और उसके सिर पर बैठ गया। लोगों ने देखा कि यह तो भिखारी है इसको नहीं राजा बनाना। उसमें तीन बार इन्कार करने की शर्त होती थी। बाज फिर उड़ाया गया और वह फिर उसके सिर पर बैठ गया, फिर तिबारा उड़ाया गया फिर आकर बैठ गया, तब जनता ने कहा कि तीन बार बाज ने प्रमाणित कर दिया कि राजा हमारा यही होगा, अब इसी को राजा स्वीकार कर लो, भिखारी है तो क्या? यह तो हमारे देश का भाग्य है। अब वह देख रहा है कि उसे लोगों ने राजा चुन लिया और बग्घी पर बैठा कर उसे राजमहल पर ले गये। वहाँ देखा कि उसे स्नान कराया, स्नान करा करके उसे राज सिंहासन पर बिठा दिया। अब वह राज सिंहासन पर बैठा है सपने में और राज पुरोहित तिलक ले कर के राजतिलक करने के लिए अंगूठा ज्यों उठाया इतने में वह महिला आ गई और बाबा कह कर आवाज़ दी तो भिखारी बोला कि देवी थोड़ी देर और रुक जाती, राजतिलक तो हो जाने दिया होता। तेरी जरा सी भिक्षा ने मेरा राज्य छीन

लिया। यही खेल है इस संसार का भी लेकिन यह ज़रा लंबा स्वप्न है।यह पूरे जीवन का होता है। वह छोटा होता है इसके लिए तुलसीदास जी लिखते हैं-

**एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।**

(रा० 2-93-2)

तुलसीदास जी ने पूछा कि जागता कौन है? कहा-इस जगत् रूपी रात्रि में योगी जागता है। जागने का लक्षण क्या है? कहा- परमारथी प्रपंच बियोगी। वह अपने प्रपंच से मुक्त हो करके सदैव परमार्थ में लगा रहता है। जो व्यक्ति परमार्थ में अपना जीवन लगाये हुए है, प्रपंच से मुक्त है, दूसरे शब्दों में जिसको अपने लिए कुछ नहीं चाहिए, जो लोक कल्याण में ही लगा रहता है, उसका नाम योगी है। आगे तुलसीदास जी कहते हैं-

**जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा।।**

(रा० 2-93/2)

जब संसार के विषयों के विलास से वैराग्य हो जाये, तब जान लो कि यह जीव जग गया। जगना कोई इतना आसान नहीं है।

**होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा।।**
**सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू।।**

(रा० 2-93-3)

मेरे कहने का अभिप्राय कि स्वप्न के दो स्तर हैं। एक जागते हुए स्वप्न देखना अर्थात् संसार के इस स्वरूप को सही स्वीकार कर लेना लेकिन बौद्धिक रूप से जागृति हो जाती है तो पता चलता है कि यह तो सब सपना ही था। लेकिन पहले तो यह सब सच्चा ही लगता है। जैसे जागने पर स्वप्न मिथ्या लगता है वैसे ही जगत् का वास्तविक रूप पता चलने पर सब मिथ्या लगता है। वह जानने लगता है कि इसको जैसा मैं

जानता था यह वैसा नहीं है। मिथ्या माने है ही नहीं, ऐसा नहीं है। मिथ्या शब्द का अर्थ होता है कि जैसा हम जानते थे वैसा नहीं है। जैसे शरीर को हम जानते थे कि हमारी आत्मा यही है लेकिन देख लिया कि यह आत्मा नहीं, आत्मा तो इससे परे है। अमुक को हम जानते थे कि यह हमारा अपना है लेकिन देख लिया कि मेरा अपना तो है ही नहीं वह। जिनको हम जानते थे कि ये मेरे अपने हैं वे ही मेरे नहीं रहे। जिस पदार्थ को जानता था कि यह मेरा अपना है, वह पदार्थ ही मेरा नहीं रहा। यहाँ कुछ भी अपना नहीं है, यह शरीर ही अपना नहीं है तो शरीर से सम्बन्धित सब कुछ अपना कैसे हो जायेगा इसलिए यह लम्बा सपना है। सपने के भी दो स्वरूप हैं-एक नींद में लेने वाला सपना और एक मोह निद्रा में लेने वाला सपना। तुलसीदास जी लिखते हैं कि मोह रूपी रात्रि में ये सब लोग सो रहे हैं और उसमें अनेक प्रकार के स्वप्न देख रेहे हैं। गीता में प्रभु कहते हैं-

**असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।**
**ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।।**
**आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।**

(गीता 16/14,15)

यह सब सपना है और इस प्रकार से सपना कौन देख रहा है? कहा कि मोह रूपी निद्रा में जो सो रहे हैं। स्वप्न के भी दो रूप होते हैं और सुषुप्ति जो है वह भी दो प्रकार की होती है। एक तो सुषुप्ति है जो मैंने आपको बताया कि जब आपका अहं घोर तमोगुण के प्रभाव में बुद्धि में लीन हो जाता है तब सुषुप्ति अवस्था आती है। उस अवस्था में आप देखते हैं कि आपका अपना आप भी नहीं रहता। घोर निद्रा जिसे आप deep sleep कहते हैं, उस अवस्था में जब आप जाते हैं तो आप को अपना पता रहता है क्या? आपके संबंधी का, मकान का, सारे वैभव का

पता रहता है क्या? कुछ पता नहीं रहता। जब अपना ही नहीं रहा तो कहाँ से पता चलेगा? अहं के नाते ही तो सब संबंध हैं न? जब अहं ही अपने कारण में लीन हो जाता है तो उसमें स्फुरणा नहीं होती, बुद्धि रूपी कारण में अहं की स्फुरणा जो हो रही है उसमें जाकर लीन हो जाती है क्योंकि बुद्धि तमोगुण से आच्छादित हो जाती है जिससे उसमें स्फुरणा नहीं होती। क्यों नहीं होती यह भी समझ लो। पानी देखा है न, पानी यदि साफ रहेगा तो उसमें हवा के संसर्ग से लहरें उठती रहती हैं। यदि वही पानी थोड़ा गंदला हो जाये तो फिर हवा के संसर्ग से उसमें लहरें नहीं उठेंगी। गंदले पानी में कभी तरंगें नहीं उठतीं। जितना साफ पानी होगा, उतनी ही उसमें तरंग उठेगी। कम गंदला पानी है तो उसमें तरंग उठेगी लेकिन थोड़ी उठेगी। इसी रूप से आपका चित्त जब तमोगुण से आवृत हो जाता है तो उसमें तरंग नहीं उठती यानी स्फुरणा नहीं होती। शांत हो जाता है और जब उसमें थोड़ा तमोगुण का आवरण है रजोगुण का प्रभाव है तो उसमें तरंग उठती है जिसको आप स्फुरणा कहते हैं। यह स्वप्न जो है यह उस अवस्था की स्थिति है जहाँ थोड़ी-2 स्फुरणा उठ रही है। जब तमोगुण के द्वारा आच्छादित हो जाती है तो उसमें स्फुरणा नहीं उठती, यह अवस्था है सुषुप्ति की लेकिन यह सुषुप्ति अहं की सुषुप्ति है, यह बात याद रखिये। यहाँ पर घोर निद्रा में कौन है? अहं है लेकिन अहं घोर निद्रा में हो जाये तो वह कुछ काल के पश्चात् पुनः जग जाता है लेकिन हमने तो इतिहास में पढ़ा है कि कई जातियाँ सैंकड़ों नहीं हज़ारों वर्षों तक उसी घोर निद्रा में पड़ी रहती हैं। बौद्धिक रूप से सुषुप्ति में पड़ी हैं। उनको कुछ पता नहीं है अपना। वे कब जगेंगी भगवान् जाने। आज भी आपको ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो बौद्धिक स्तर पर सोये हुए हैं, घोर सुषुप्ति में हैं। उनको पता नहीं है कि संसार भी कुछ है या संसार के साथ हमारा संबंध भी कुछ है। ऐसे

बहुत से आदमी मिलेंगे आपको।

यह बात याद रखो कि सुषुप्ति का केवल एक ही भेद नहीं है। यह तो आपके अहं की सुषुप्ति है। अहं की सुषुप्ति इतनी खतरनाक नहीं है। यदि आपका अहं सो जाता है कुछ काल के पश्चात् वह जग जायेगा लेकिन आपकी बुद्धि ही यदि सुषुप्ति में पड़ गई तो फिर आप क्या करेंगे? बुद्धि तमोगुण से आच्छादित हो गई तो फिर आप क्या करेंगे? इसीलिए जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, ये तीनों अवस्थाएं जो हैं, इनके भिन्न-2 रूप हैं, भिन्न-2 भेद हैं लेकिन एक बात और याद रखिये कि इस जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे एक अवस्था और है जिसको तुरीयावस्था कहते हैं। यह तुरीयावस्था क्या है? जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, ये तीनों अवस्थायें तीनों गुणों से सम्बन्धित हैं- तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण। सतोगुण से सम्बन्धित जाग्रत अवस्था है जिसमें आपकी 23 इन्द्रियाँ काम करती हैं। कहीं-कहीं 21 इन्द्रियाँ बताईं गई हैं लेकिन जब आप स्वप्नावस्था में चले जाते हैं तो वहाँ केवल 19 इन्द्रियाँ काम करने लगती हैं। ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आपकी सो जाती हैं। एकोनविंशत मुखः माने 19 मुख वाली। जब आप घोर सुषुप्ति में चले जाते हैं तो वहाँ पर ये कोई काम नहीं करती, प्रगाढ़ निद्रा है लेकिन इसके साथ ही जो तुरीयावस्था है वह तीनों गुणों से सम्बन्धित नहीं है। इसमें सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण काम नहीं करते। गुणों से ऊपर उठ करके जब आपकी चेतना अपने आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित होती है तब उसको तुरीयावस्था कहते हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, ये अवस्थायें प्रकृति की हैं और आप के जीवन में इन तीनों अवस्थाओं का प्रवाह चलता रहता है। हर एक व्यक्ति नित्य प्रति जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में यात्रा करता रहता है। तुरीय में यात्रा नहीं होती। यदि तुरीय में चला जाये तो यह सारा प्रपंच समाप्त हो जाता है

उसका। तुरीय है आत्म स्थिति जिसको चौथी अवस्था कहते हैं। अब उस चौथी अवस्था में केवल योगी पहुँचता है अभ्यास के द्वारा। यदि आप अपने स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर, इन तीनों शरीरों से उठ करके अपने आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित होने का प्रयत्न करें और यदि वहाँ आप पहुँच जायेंगे तो वह आपकी तुरीयावस्था होगी। यह तुरीयावस्था या चौथी अवस्था का स्वरूप है। आत्मरति, आत्मतृप्ति, आत्मतुष्टि,ये तुरीयावस्था की देन है और तुरीयावस्था में पहुँचे हुए योगी की क्या स्थिति होती है तो भगवान् ने कहा कि जैसे समुद्र में असंख्य नदियाँ आकर गिरती हैं लेकिन उन नदियों के गिरने से समुद्र में कोई चंचलता नहीं आती, कोई व्यवधान नहीं आता, कोई उन्माद नहीं आता इसी रूप में तुरीयावस्था में पहुँचे हुए योगी में इस संसार के सारे विकार आते और जाते रहते हैं, उसको कोई अन्तर नहीं पड़ता। गीता के दूसरे अध्याय में भगवान् ने इस बात को समझाया कि तुरीयावस्था आत्म स्थिति है। प्रभु के शब्दों में-

**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**
**स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।**

(गीता 2/72)

इस तुरीयावस्था में पहुँचा हुआ व्यक्ति कभी मोह को प्राप्त नहीं होता। इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं और यदि इसी अवस्था में वह शरीर छोड़ दे तो उसे ब्रह्मनिर्वाण की प्राप्ति होती है माने वह चेतना जो शरीर को प्रकाशित कर रही है वह अपने कारण रूप परमात्मा में लय हो जाती है। उसके लिए तुलसीदास जी ने लिखा है-

**सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होई अचल जिमि जिव हरि पाई।।**

(रा० 4-14/4)

जैसे नदियों का जल समुद्र में जाकर प्रशान्त हो जाता है, समुद्र रूप हो जाता है ऐसे ही यह जीव परमात्म स्वरूप हो कर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। यह वेद के एक मन्त्र का अनुवाद है जो तुलसीदास जी ने वहाँ पर लिखा है जिसमें यह बताया है-

**यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे**
**ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।**
**तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः**
**परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।**

(मुण्डक० 3/2-8)

जैसे नदियाँ अपने नाम और रूप का त्याग करके समुद्र में लीन हो जाती हैं, समुद्र हो जाती हैं ऐसे ही विद्वान्, विवेकी, परम सत्य को जानने वाला जो योगी है वह अपने नाम और रूप से मुक्त हो करके उस परमात्मा के साथ युक्त हो जाता है। जो इसमें युक्त है वह उससे कभी युक्त नहीं हो सकता, जो उससे युक्त हो जाता है उसे पुनः इसमें कभी आना नहीं पड़ता। यह तुरीयावस्था की बात है और यह मोक्ष की एक स्थिति है। जाग्रत अवस्था में उसे जीवन मुक्त कहते हैं और शरीर छोड़ने के पश्चात् वह विदेह मुक्त हो जाता है। हर एक मनुष्य के लिए तीन अवस्थायें तो स्वाभाविक हैं, प्रकृति से सम्बन्धित हैं लेकिन चौथी अवस्था स्वाभाविक नहीं है, वह आपके प्रयत्न से सम्बन्धित है। जब आप इस मनुष्य शरीर का पूर्ण रूप से सदुपयोग करेंगे तब आप उस चौथी अवस्था को प्राप्त करने के अधिकारी बनेंगे। इस विषय में कठोपनिषद् का एक मन्त्र है-

**जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं**
**न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।**
**ततो मया नाचिकेतश्चितोग्निः**

**नित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।।**

(कठ०1/2-10)

यमराज नचिकेता को समझाते हैं कि हे नचिकेता, मैं भली-भांति जानता हूँ कि इन अनित्य पदार्थों का सेवन करते हुए ध्रुव तत्त्व को नहीं प्राप्त किया जा सकता। ऐसा मैं जानता हूँ लेकिन नचिकेता मेरे पास एक ऐसी विद्या है जिसका नाम है चितोग्नि। नाचिकेत चितोग्नि विद्या है मेरे पास। इन्हीं अनित्य पदार्थों का प्रयोग करके मैंने नित्य तत्त्व को प्राप्त कर लिया। आप देखिये दुनिया में जितने महापुरुष हुए हैं, जिनको realised souls कहते हैं आप, उन सबने इन्हीं अनित्य पदार्थों का प्रयोग करके ही तो नित्य को जाना है। क्या आप समझते हैं कि जो शरीर मेरे पास है, जो बुद्धि मेरे पास है, जो इन्द्रियाँ मेरे पास हैं, जो मन मेरे पास है, जिन पदार्थों से इनका निर्माण हुआ है, आप लोगों का शरीर, मन, बुद्धि उनसे नहीं बना क्या? तत्त्व तो वही है। उन्हीं पदार्थों से दुनिया में प्रत्येक मनुष्य के जीवन का सृजन हुआ है, जिन पदार्थों से किसी महापुरुष के जीवन का सृजन हुआ है। कोई भेद नहीं है उसमें तत्त्वतः लेकिन जिन्होंने उस विद्या को ग्रहण कर लिया और उस विद्या के प्रकाश में इसका प्रयोग किया तो वे उससे एक हो करके परमानन्द स्वरूप को प्राप्त कर लिए लेकिन जो उस विद्या से अनभिज्ञ रहे वे इन्हीं यन्त्रों में भटकते हुए अपनी जिन्दगी बरबाद कर दिये। जिसने उस विद्या को प्राप्त कर लिया वह तो अपने आप को उससे युक्त कर लिया। गीता में भगवान् ने 14वें अध्याय में कहा-

**इदं ज्ञानमुपाश्रित्य ममसाधर्म्यमागता।**

मेरे इस बताये हुए ज्ञान का अवलम्बन लेकर के मनुष्य मेरे इस धर्म को प्राप्त कर लेता है और परिणामतः -

**सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।**

वह जन्म-मरण के प्रवाह से सदा के लिए मुक्त हो जाता है लेकिन यही सामग्री उन लोगों के भी पास है जो अपने लिए नरक का रास्ता बना लेते हैं। यही सामग्री उनके भी पास है जो अपने लिए स्वर्ग का रास्ता बना लेते है, यही सामग्री उनके पास है जो मर कर के इन्सान नहीं हैवान की योनि में चले जाते हैं। सामग्री तो यही है लेकिन प्रश्न है कि इसका उपयोग आप कैसे करते हैं? यही शरीर है, यही मन है, यही बुद्धि है, यही आत्मा है, सब कुछ यही है। भगवान् ने गीता के तीसरे अध्याय में कहा अर्जुन से कि तुम जानते हो-

**इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।**
**मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।**
**एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।।**
**जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।**

(गीता 3/42,43)

कहा, तुम्हारे पास वही सारे साधन हैं जो किसी के पास हैं, इनका तुम सदुपयोग करो और सदुपयोग करके तुम संसार प्रवाह से स्वयं को परे कर सकते हो।

मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि यह तुरीयावस्था मानव मात्र के लिए प्राप्तव्य है लेकिन कैसे प्राप्तव्य है? जो साधन आप को मिला है इन्हीं अनित्य साधनों का प्रयोग करके आप उस नित्य तत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। इन्हीं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं का सदुपयोग करके आप सही मायने में तुरीयावस्था तक पहुँच सकते हैं लेकिन जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति पर ध्यान नहीं देता, इन अवस्थाओं का सदुपयोग नहीं कर पाता, वह तुरीयावस्था से वंचित रह जाता है और इन्हीं तीनों अवस्थाओं में भटकता रह जाता है। इन्हीं तीनों अवस्थाओं में

भटकना जो है वही तिर्यक योनि, मानव योनि और देव योनि में भटकना है जिसके लिए भगवान् ने कहा-**कारणं गुणसंगोऽस्य** सद् योनी और असद् योनि में भटकाव इन्हीं के कारण हो रहा है। वह साधन आपके पास उपलब्ध हैं। इन्हीं साधनों के द्वारा अपने आप को आप ऊपर उठा सकते हैं और ऊपर उठा कर के तुरीयावस्था में अवस्थित हो कर परमानन्द के भागी बन सकते हैं लेकिन आवश्यकता है मिले हुए का सदुपयोग करने की विद्या प्राप्त करने की।अब प्रार्थना कर लें।

**हरिः ॐ तत्सत्।**

# मृत्यु के बाद

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ !

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना। कल का विषय था जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। उस विषय में थोड़ी सी बातें संक्षेप में मैंने बताई थीं। आज का विषय सही में शास्त्रगम्य है, अनुभवगम्य भी कहा जा सकता है लेकिन वह सब के लिए नहीं- **मृत्यु के बाद।** मृत्यु क्या है? इसका जिसने जीवन में अनुभव किया हो वही मृत्यु के बाद की दशा का कथन कर सकता है। मृत्यु के दो भेद हैं-दो प्रकार की मृत्यु होती है, एक जीते जी मृत्यु होती है और एक शरीर छूटने को मृत्यु कहते हैं। शरीर रहते हुए शरीर से अलग अपने आप को करले यह साधना का विषय है। सामान्य लोगों के लिए यह सुलभ नहीं है। मैंने साधना काल में उस अवस्था में पहुँचने पर एक छन्द लिखा था और आज भी स्मरण है मुझे उसका-

**मरने का रहस्य है गुप्त सखे पर जान इसे विरले कोई पाते।**
**जिन जान लई मरने की कला मरके फिर वे मरने नहीं आते।।**
**मरना किस भांति हो जीवन में बस बावरे योग यही सिखलाते।**
**प्रिय पाते वही जन संत कहें जग में जिन जीवत ही मर जाते।।**

यह मैंने 1962 में लिखा था। एक अवस्था होती है जिस

में साधक अपने शरीर को छोड़ करके अपने आप को बाहर कर देता है और शरीर निश्चेष्ट मृतवत् हो कर पड़ा रहता है, वह देखता है और अपनी इच्छानुसार पुनः उस शरीर में प्रवेश करता है। इसको योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि ने महाविदेह स्थिति कहा है लेकिन ये बातें सीधे से समझ में आने वाली नहीं हैं इसलिए इनकी विशेष चर्चा करना मैं उचित नहीं समझता। इतना अवश्य मैं आप से कहूँगा कि जैसे आप स्वप्नावस्था में इस शरीर से बाहर जाते हैं और बाहर के दृश्य को देखते हैं, घूमते हैं, फिरते हैं, वह जो तत्त्व स्वप्नावस्था में शरीर से बाहर जाकर सारा दृश्य देखता है, वही तत्त्व जाग्रत अवस्था में जब बाहर जाने की क्षमता प्राप्त कर ले और इस शरीर से निकल कर अपने अभीष्ट स्थान पर जाकर वहाँ के दृश्य को देखे, वहाँ के लोगों से मिले, उनसे बातचीत करें, वहाँ की गतिविधि को जानकर पुनः अपने शरीर में आ जाये, यह वह अवस्था है योग की जिसे विदेहावस्था कहते हैं। शरीर में रहते हुए भी शरीर से अलग हो जाये तो उस अवस्था में यह शरीर मृतकवत् निश्चेष्ट पड़ा रहता है और जैसे हम दूर से आते हैं और अपने घर में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार से योगी उस अवस्था में भ्रमण करके आता है और शरीर में प्रवेश करता है तो शरीर में पुनः गतिविधि प्रारम्भ हो जाती है।

आप लोगों ने एक कहानी सुनी होगी कि जब जगद्गुरु आदि शंकराचार्य पहले अध्ययन करने के पश्चात् अपने गुरु के पास रह रहे थे तो उनके गुरु ने कहा कि इस समय जो कार्य तुम्हें करना है उस का प्रारम्भ एक महापुरुष ने किया है और उस महापुरुष के चरणों में तुम जाओ, उससे शिक्षा ग्रहण करो और हो सके तो उनको अपना सहयोगी बनाओ। उन्होंने पूछा कि वे महापुरुष कहाँ हैं? उन्होंने कहा कि इस समय वे महापुरुष प्रयाग संगम पर जहाँ गंगा-यमुना त्रिवेणी है, वहाँ पर वे अपने

शरीर को तुषाग्नि में जला रहे हैं। आचार्य शंकर गुरु के आदेशानुसार वहाँ पहुंच गये। जाकर देखा कि एक महापुरुष धान की खूही जिसे संस्कृत में तुष कहते हैं उसके ऊपर बैठे थे और उसमें आग लगा रखी थी, उनका कमर से नीचे का शरीर जल चुका था और वे शान्त हो कर उसमें बैठे थे। आचार्य शंकर पहुँचते हैं तो उनकी स्तुति करते हैं और स्तुति करने के बाद वे पूछते हैं कि आप यह क्या कर रहे हो? आप इतने महान् पुरुष हो कर के ऐसा क्यों कर रहे हो? तो उन्होंने बताया कि जो व्यक्ति अपने गुरु का अपमान करता है उसके लिए दुनिया में कोई प्रायश्चित नहीं है, केवल एक ही प्रायश्चित है कि वह तुषाग्नि में तिल-तिल करके जले। मैंने अपने गुरु का अपमान किया है इसलिए अपने आप को जला रहा हूँ। यह हमारे शास्त्र की मर्यादा है और उसका मैं पालन कर रहा हूँ। आचार्य शंकर बड़े आश्चर्य में पड़े कि आप ने अपने गुरु का अपमान कैसे किया, कहाँ किया?

उन्होंने कहा कि यद्यपि वे मेरे गुरु नहीं थे, उन्हें छल से गुरु स्वीकार किया था। बौद्धों ने उस समय वैदिक धर्म का भारत में खण्डन किया और बौद्ध धर्म को राजधर्म बना दिया गया, पूरे भारत में वैदिक धर्म का नाम लेने वाला कोई नहीं रहा। काशीराज की कन्या अपनी बालकनी में बैठ कर के रो रही थी तो एक बारह वर्ष का लड़का गंगा स्नान करके जा रहा था। उसकी पीठ पर उसके आँसू गिरे, उसने देखा कि मेरी पीठ पर पानी कहाँ से आ गया, बादल तो हैं नहीं? ऊपर देखा तो एक राजकुमारी बैठी रो रही थी। उसने उससे पूछा कि तुम्हारे रोने का कारण क्या है? **किं कारणं तव रोदनम्?** उस लड़की ने कहा- **'किं करोमि, क्व गच्छामि, को वेदान् उद्धरिष्यति?** रोते हुए उस लड़की ने कहा कि मैं क्या करूँ, किसके पास जाऊँ, वेदों का उद्धार कौन करेगा इसलिए मैं रो रही हूँ। इस समय बौद्ध विचारकों के द्वारा वेद का महत्त्व समाप्त हो

गया है। उस बारह वर्ष के बच्चे ने प्रतिज्ञा करते हुए कहा कि-

**मा विशूचि वरारोहे, भट्टाचार्योऽस्मि भूतले।**

हे वरारोहे, हे सुन्दरी, तू रो मत, चिन्ता मत कर, अभी भट्टाचार्य इस पृथ्वी पर जीवित है इसलिए मेरे होते हुए वेद का कोई अपमान नहीं कर सकता, यह प्रतिज्ञा थी उस बारह वर्ष के बालक की और उसने निर्णय लिया कि मैं बौद्धों से शास्त्रार्थ करके उनको परास्त करूँगा लेकिन पहला प्रश्न यह हुआ कि बौद्धों से शास्त्रार्थ करने से पहले यह तो जान लेना चाहिए कि उनका विचार क्या है और उनका रहस्य क्या है? वह बालक नालन्दा विश्वविद्यालय में जाकर के बौद्ध बन गया जो उस समय बौद्धों का गढ़ था। वह बौद्धों के सबसे बड़े आचार्य से शिक्षा ग्रहण करने लगा और वहाँ कुछ दिन रह कर शिक्षा ग्रहण किया। एक दिन सातवीं मंज़िल पर उसका आचार्य पढ़ा रहा था, उस की बातें सुन कर बालक रोने लगा। जब रोने लगा तो आचार्य ने पूछा कि तुम रो क्यों रहे हो? उस बालक ने उत्तर दिया कि मेरा आचार्य मिथ्या भाषण कर रहा है। यह सुन कर के आचार्य को बड़ा क्रोध आया कि तुम कैसे कह सकते हो कि मैं मिथ्या भाषण कर रहा हूँ। यदि मैं मिथ्या भाषण कर रहा हूँ तो सत्य क्या है? वह बालक खड़ा हो गया और वेद की व्याख्या करने लगा। अब गुरु शिष्य में शास्त्रार्थ हो गया और अन्त में उसने अपने गुरु को पराजित कर दिया। जब पराजित कर दिया तो वहाँ पर जितने बौद्ध थे उन्होंने निश्चय किया कि यदि यह समाचार बाहर मिल गया कि एक ब्राह्मण बालक ने बौद्ध आचार्य को पराजित कर दिया है तो बौद्ध धर्म यहाँ से समाप्त हो जायेगा क्योंकि राजधर्म बौद्ध धर्म था और राजा उसी धर्म को स्वीकार करता था।

अब उन्होंने निश्चित किया कि इस बालक को मार दिया जाये

और यह यहाँ से जीवित जाने न पाये। बालक समझ गया कि ये हमें मारने की युक्ति ढूँढ रहे हैं। उन्होंने निश्चय किया कि हमें किसी प्रकार से इन अविश्वासियों के हाथ से मरना नहीं। आप ज़रा कल्पना कीजिये कि वह बालक सातवीं मंजिल पर पढ़ रहा था, आचार्य ने कहा कि तुम कह रहे हो वेद सत्य है, इसका प्रमाण क्या है? उसने कहा कि देखिये मैं यहाँ सातवीं मंज़िल से छलाँग लगाता हूँ, यदि वेद सत्य है तो मैं जीवित रहूँगा और नहीं सत्य है तो मैं मर जाऊँगा। बौद्ध तो चाहते थे कि वह मर जाये और उनको तो कल्पना भी नहीं थी कि सातवीं मंज़िल से जो आदमी छलांग मारेगा, वह नहीं मरेगा। नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेष अब भी वहां पड़े हुए हैं, आज भी उनकी एक-एक मंजिल को देखिये तो आपको हैरानी होगी 12-15 फुट की एक मंजिल है और सात मंजिल कितनी ऊँची होगी, आप ज़रा कल्पना कीजिये? वहाँ उसने कहा कि मैं कूद रहा हूँ, यदि वेद सत्य है तो मेरी रक्षा करेगा। उसने यह कह कर वहाँ से छलांग लगा दी और गिरते ही उनका घुटना टूट गया। जैसे हनुमान जी बैठते हैं वैसे वह वीरासन से गिरा। लोग दौड़ कर के नीचे आये तो देखा वह जीवित था। उसने ललकारा कि देखो वेद सत्य है। एक ने पूछा कि यदि वेद सत्य है तो तुम्हारा घुटना कैसे टूट गया? उसने तुरंत कहा कि मैंने एक गलती की है। मैंने कहा कि यदि वेद सत्य है, 'यदि' शब्द जो कहा, इसके नाते मेरे को यह दण्ड मिला है। परिणामतः वैदिक धर्म राजधर्म घोषित हो गया और बौद्ध धर्म समाप्त हुआ। अपने बलिदान से वैदिक धर्म की स्थापना करके उस महापुरुष ने अपने सिद्धान्तों की एक पुस्तक लिखी और उसको लिखने के पश्चात् उसने निर्णय किया कि मैंने गुरु को पराजित किया है (उसने बौद्ध आचार्य को गुरु तो स्वीकार किया था) इसलिए अब मैं अपने आप को तुषाग्नि में भस्म करूँगा तभी हमारे धर्म

की प्रतिष्ठा होगी। इसलिए वे त्रिवेणी के संगम पर तुषाग्नि में अपने आप को जला रहे थे। उस महापुरुष का नाम था कुमारिल भट्ट।

आचार्य शंकर उनके पास पहुँचे। कुमारिल भट्ट ने कहा कि किसने कहा कि तुम्हारा काम समाप्त हो गया, अब तुम्हारा काम शुरु होगा और तुम्हारे काम में सहयोग देगा मेरा शिष्य, मण्डन मिश्र नाम है उसका। आचार्य शंकर मण्डन मिश्र के पास गये। वे कुमारिल भट्ट के बहनोई भी लगते थे और उनके शिष्य भी थे। कुमारिल की छोटी बहन थी जिसका नाम था विश्वभारती, वह मण्डन मिश्र से ही ब्याही थी। जब वहाँ पर गये तो मण्डन मिश्र और आचार्य शंकर का शास्त्रार्थ इस शर्त पर हुआ कि जो विजयी होगा, यदि मण्डन मिश्र विजयी हुए तो आचार्य शंकर गृहस्थ बन जायेंगे और यदि आचार्य शंकर विजयी हुए तो मण्डन मिश्र संन्यासी बन जायेंगे। पूछा कि मध्यस्थ कौन होगा जो निर्णय करेगा कि कौन विजयी हुआ? मण्डन मिश्र ने कहा कि मैं विश्वभारती को मध्यस्थ मानता हूँ क्योंकि वह भी महाविदुषी थी। उन दिनों ऐसा नहीं था कि स्त्रियाँ वेद-शास्त्र नहीं पढ़ती थीं। उनका शास्त्रार्थ होने लगा। शास्त्रार्थ में आखिर में जाकर मण्डनमिश्र पराजित हो गये। जब वे पराजित हो गये तो विश्वभारती ने कहा कि अभी आपने आधा विजय प्राप्त किया है, आधा अभी बाकी है क्योंकि जब आदमी विवाहित हो जाता है तो आधा होता है। आधा अंग अर्थात् अर्धांगिनी उसकी स्त्री होती है। आपने आधे को जीता है, मुझे नहीं जीता। मेरे से शास्त्रार्थ कीजिये, यदि मेरे से जीत जायेंगे तो मण्डन संन्यासी बन जायेंगे। जब उससे शास्त्रार्थ हुआ तो आचार्य शंकर हार गये, जीत नहीं सके। उसने कामशास्त्र से प्रश्न कर दिया। उन्हें कामशास्त्र का पता ही नहीं था इसलिए वे उससे हार गये।

उन्होंने कहा कि देवी मुझे कुछ दिन की समय दे दो। विश्वभारती

ा कहा कि ठीक है, मैं आपको छः महीने का समय देती हूँ। छः महीने का समय ले कर आचार्य शंकर आते हैं और अपने शिष्यों से कहते हैं कि तुम मेरे शरीर की रक्षा करना। उन्होंने अपने शरीर को एक कमरे में बंद कर दिया और स्वयं को अपने शरीर से निकाला और चले वहाँ से। उसी समय उज्जयिनी के राजा की मृत्यु हो गयी थी, राजा को जलाने के लिए ले जा रहे थे, वे उसमें प्रवेश कर गये, परकाया प्रवेश किये तो राजा उठ कर बैठ गया। पूरे राज्य में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उनका अपना शरीर वैसे ही सुरक्षित पड़ा हुआ था और परिणाम यह हुआ कि जब राजमहल में गये तो उनको कुछ पता तो था नहीं क्योंकि आत्मा तो दूसरी थी। कोई राज्य के विषय में पूछे तो कहें मेरी तो विस्मृति हो गयी, मुझे तो कुछ पता नहीं। कोई बहाना तो बनाना था। अब रानी से हमेशा वे कामशास्त्र की चर्चा करें। रानी सोचने लगी कि मेरे पति तो कभी ऐसी चर्चा करते नहीं थे, यह कौन है? वह जान गई कि यह कोई नई आत्मा है। अब उसने पता लगाना शुरू किया और आदेश दिया कि हमारे राज्य में कहीं भी किसी व्यक्ति का शव यदि सुरक्षित हो तो उसको नष्ट कर दिया जाये क्योंकि शरीर नष्ट होने पर पुनः उसमें प्रवेश नहीं हो सकता। इतने में छः महीने बीत गये और उनको सारा बोध हो गया और वे आकर अपने शरीर में पुनः प्रवेश कर गये। प्रवेश कर के पुनः उन्होंने विश्वभारती से शास्त्रार्थ किया और उसे पराजित किया। उसके पश्चात् मण्डन मिश्र और विश्वभारती दोनों संन्यासी हो गये। मण्डन मिश्र उनके शिष्य बने और सुरेश्वराचार्य उनका नाम रखा और उनकी स्त्री जो थी वह उनके पूरे मण्डल की माँ के रूप में रहती थी, सबकी संभाल करती थी। मैं आपको यह बता रहा था कि योगी लोग जो परकाया प्रवेश की सिद्धि कर लेते हैं वो काया के बाहर हो कर के पुनः उसमें प्रवेश की सिद्धि करते हैं, वह

एक प्रकार से मृत्यु का दूसरा रूप होता है। इस अवस्था में जो पहुँचे हैं, उनको मरने की कला आ गयी है, वे जानते हैं कि मरना कोई बहुत बुरी चीज नहीं है, शरीर छूट गया तो छूट गया, नया शरीर धारण करेंगे। वे नया शरीर धारण करते हैं या किसी अन्य पुराने शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। बहुत से योगी ऐसे हैं जो नये शरीर का निर्माण कर लेते हैं। बहुत से ऐसे योगी हैं जो मृत शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और लोग सोचते हैं कि यह तो मर कर के जी गया। ऐसी बहुत सी घटनायें होती रहती हैं। यह तो था मृत्यु का एक रूप लेकिन मृत्यु का यह रूप सब के लिए सुलभ नहीं है। परकाया प्रवेश की यह प्रक्रिया जो महर्षि पतञ्जलि ने लिखी है वह जब होती है तब यह संभव होता है लेकिन शरीर से बाहर निकलने वाली प्रक्रिया जो है वह बहुत कठिन है। इसको किया जा सकता है इसमें ज़रा भी संदेह नहीं। इसको मैंने कर के देखा है मृत्यु का एक दूसरा स्वरूप है, वह यह है कि आपको जो यह शरीर मिला है, यह आपके प्रारब्ध कर्मों का परिणाम है। आपके दो प्रकार के कर्म हैं-एक तो अतीत में जो कर्म आपने किये हैं, उन कर्मों को संचित कर्म कहा जाता है और उन संचित कर्मों में से जिन कर्मों में फल देने की परिपक्वता हो गयी, जो कर्म परिपक्व हो गये हैं, फल देने के लिए तत्पर हो गये हैं, उन कर्मों के परिणामस्वरूप आपको शरीर मिला है और किसको कौन सा शरीर मिलेगा, उन कर्मों पर अवलम्बित है। वह शरीर पशु-पक्षी का भी मिल सकता है और मनुष्य का भी मिल सकता है, देवता का भी मिल सकता है। गीता में भगवान् ने इस बात को स्पष्ट करते हुए बताया है-

**ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।**
**जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।**

(गीता 14/18)

यह विषय बड़ा गम्भीर है। भगवान् कहते हैं कि जो सतोगुण में स्थित हो कर के शरीर छोड़ता है, वह मर कर के स्वर्ग में जाता है। भारत में ऋषियों ने यह जो मुर्दे को जलाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की उसके पीछे बहुत बड़ा विज्ञान है। कहा कि जब आत्मा शरीर छोड़ती है तो वह स्वतन्त्रता से छोड़ती है, अपनी रुचि से जाती है। उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं होता लेकिन जो आत्मा परवश, प्रकृति के वशानुसार, गुणों के अनुसार, कर्मानुसार शरीर को छोड़ती है वह शरीर को छोड़ कर एकाएक कहीं नहीं जाती। वह शरीर के चारों तरफ घूमती रहती है। जब शरीर को उठा कर ले जाते हैं, कहीं गाड़ देते हैं तो वहाँ भी बहुत दिनों तक घूमती रहती है क्योंकि शरीर के साथ उसकी attachment होती है, मोह होता है। जब शरीर को जलाते हैं तब वह आत्मा वहाँ से प्रस्थान करती है। जलाने पर जीव की तीन गतियाँ-ऊर्ध्वगति, मध्यगति और अधोगति होती हैं। जलाने पर एक तो उसमें से ज्वाला निकलती है और उससे पहले धुआँ निकलता है। जो न तो बहुत अच्छे कर्म करने वाले हैं और न बहुत बुरे कर्म करने वाले हैं, वे धुएँ के साथ उस शरीर से बाहर जाते हैं लेकिन जो पुण्यकर्मा हैं उनके शरीर को जब आग लगाते हैं तो धुआँ निकलता ही नहीं, ऐसी आत्माएं सीधा स्वर्गलोक को जाती हैं, ऊर्ध्व गति को प्राप्त करती हैं। अग्नि की ज्वाला के साथ जो आत्माएं निकलती हैं वे सूर्य लोक को जाती हैं, धूम के साथ जो जाती हैं वे चन्द्र लोक को जाती हैं। गीता के आठवें अध्याय में भगवान् ने इसका विश्लेषण किया है। जो आत्मा बहुत पतित है वह कहीं नहीं जाती, वह राख के साथ मिट्टी में मिल जाती है, उसकी ऊर्ध्वगति नहीं होती, उसकी अधोगति होती है। जो धूम के साथ जाती है वह तो लौट कर के मनुष्य योनि में आती है, यह कर्म योनि है। जो ज्वाला के साथ जाती है वह देवलोक को

जाती है, वह तुरन्त नहीं आती, उसको आने में समय लगता है लेकिन जो धूम के साथ जाती है वह बादलों में चली जाती है, बादलों से वह वर्षा के साथ पृथ्वी पर आती है, वर्षा से फिर अन्न में आती है, अन्न को पुरुष खाता है तो वीर्य में जाती है, वीर्य से जाकर जन्म होता है। यह उसका क्रम है। यह धूम्रयान की व्याख्या है लेकिन जो ज्योतिर्यान है उससे जाने वाले स्वर्गादि लोकों में जाते हैं, वे एकाएक लौट कर नहीं आते, वे बहुत वर्षों बाद स्वर्ग का सुख भोग कर- **क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**, फिर वे मर्त्यलोक में आते हैं लेकिन जो पतित लोग हैं, जो तमोगुण से युक्त हैं, वे मर करके न तो धूम्रयान में जाते हैं और न अर्चियान अर्थात् ज्योतिर्यान में जाते हैं, वे राख में मिलते हैं और राख में मिल करके उनकी आत्माएं निम्न योनियों को जाती हैं। वे कूकर, सूकर, कीट, पतंग आदि योनियों को प्राप्त होते हैं। इसलिए भगवान् ने उनके लिए कहा-

**जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः।**

ऐसे तमोगुणी लोग जो हैं वे अधोगति को प्राप्त होते हैं। मध्यगति को प्राप्त होने वाला कौन है? जो चन्द्रलोक जाकर आता है यानी बादलों से मिल कर आता है। यह अन्न में जो जीवन है यह चन्द्रमा से है। चन्द्रमा की किरणें यदि न पड़ें तो अन्न पैदा नहीं हो सकता। वह चन्द्रमा की किरणों से ही पैदा होता है इसलिए इसे चान्द्र कहते हैं। अन्न का एक नाम सौम्य भी है क्योंकि वह सोम से पैदा होता है। धूम्र को प्राप्त करके पुनः मनुष्य योनि में आते हैं, ज्वाला के साथ जाने वाले स्वर्ग लोक को जाते हैं और राख से मिलकर अधोयोनि को प्राप्त होते हैं, इन तीन गतियों की व्याख्या भगवान् ने गीता में की है। इनकी तीन गतियाँ क्यों होती हैं तो इसके लिए भगवान् ने बताया-

**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।**

**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।**

(गीता 13/21)

कहा कि जो पुरुष प्रकृति के पदार्थों के भोग में अनुरक्त होता है, अब किस प्रकार के पदार्थों में उसकी अनुरक्ति हो गयी- सात्त्विक पदार्थ में हुई है, राजस पदार्थ में हुई है या तामस में हुई है? यदि सात्त्विक पदार्थ में हुई है तो वह सात्त्विक कर्मों का अनुष्ठान करता है, राजसिक पदार्थ में हुई है तो राजसिक कर्म करता है और तामसिक पदार्थ में हुई है तो तामसिक कर्मों का अनुष्ठान करता है। जिस प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करता है उसी प्रकार की उसकी गति होती है।

**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।**

भगवान् कहते हैं गुणों में आसक्ति होने से वह सद् योनि या असद् योनि अर्थात् कीट-पतंग आदि योनियों में जन्म लेता है। अब यह अपने आप को देखना है, अन्तर्मुखी हो कर के विचार करना है कि अपनी किस गुण में स्थिति है? सतोगुण में स्थिति है, रजोगुण में स्थिति है या तमोगुण में स्थिति है। सतोगुण में स्थिति है तो स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होगी, रजोगुण में स्थिति है तो मनुष्य लोक में आयेगा और तमोगुण में स्थिति है तो पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि योनियों में जायेगा। मृत्यु के पश्चात् की यह उसकी गति है। उपनिषदों में साफ शब्दों में यह बात बताई गयी है कि-**पुण्येन पुण्यलोकं पापेन पापलोकं प्राप्यति**। पुण्य के द्वारा वह पुण्यलोक को प्राप्त करता है और पाप के द्वारा वह पापयोनियों में जाता है। यह मनुष्य की गति है मृत्यु के पश्चात्।

एक और प्रश्न पैदा होता है कि मरने वाला मर गया तो हम उसका श्राद्ध क्यों करते हैं? क्या प्रयोजन है उसका? जिस लोक में है, उस लोक में अपने कर्मानुसार उसे फल मिलेगा। कहा कि नहीं, ऐसा नहीं है।

अपनी सन्तान के लिए ही उसने पुण्य और पाप किये हैं। मनुष्य जितने कर्म करता है, किसमें आसक्त हो कर करता हैं? सन्तान में। हर एक व्यक्ति अपने लिए पाप नहीं करता है, अपने लिए पुण्य कर्म भी नहीं करता। उसके दिमाग में यह बात होती है कि मैं शुभ कर्म करूँगा तो मेरी सन्तानों को अच्छा मिलेगा और यह सब जानते हैं कि पाप कर्म का परिणाम सन्तानों को भी भुगतना पड़ता है। हमारे बच्चेपन में हमें याद है कि भारत में जब किसी से कोई कहता था कि तुम कोर्ट में चल कर झूठी गवाही दे दो तो वह कहता था कि नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता, मैं बाल-बच्चे वाला आदमी हूँ। कोई भी व्यक्ति पापमय कर्म करते समय दस बार सोचता था कि मैं बाल-बच्चे वाला हूँ, मेरे को ऐसा काम नहीं करना चाहिए। मैं आपको एक घटना सुनाऊँ---

एक व्यक्ति था, वह जन्म से ब्राह्मण था। टी.टी. बन गया, सर्विस में आ गया रेलवे में। उसकी कुवृत्ति ऐसी हुई कि नित्यप्रति माँस खाना और मदिरा पीना, ये उसके दो व्यसन थे। जो कुछ कमाये, माँस खाये, मदिरा पिये। उसका एक लड़का था और कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन उसकी पत्नी माँस न बना कर सब्जी बना रही थी। जब भोजन करने बैठा सब्जी सामने आयी तो कहा कि यह क्या दिया मुझे, मैं बैल हूँ क्या जो मुझे घास खिला रही हैं? पत्नी बोली-मैं गई थी माँस बेचने वाले के पास तो उसके पास माँस था नहीं, उसने कहा कि मैं आपके लिए बकरा काट सकता हूँ यदि आप एक किलो माँस लें लेकिन अपन एक किलो लेकर क्या करते क्योंकि दूसरे दिन तो माँस खराब हो जायेगा, अगर एक दिन सब्जी खा लोगे तो क्या हो जायेगा? उसने कहा कि नहीं। थाली को लात मारी और चला गया खटिक के पास और कहा कि एक किलो माँस दे दे। उसने बकरा काट दिया, बकरे का सर अलग गिरा, धड़ अलग गिरा।

अब सर और धड़ दोनों अलग-अलग उछलने लगे क्योंकि एकाएक तो मरते नहीं प्राणी। वह माँस खाता था लेकिन उसने देखा नहीं था कि बकरा कैसे मारा जाता है। जब उसके सर और धड़ उछले तो वह काँप गया। उसने माँस लिया और घर चला आया। स्त्री को दिया, उसने माँस पकाया और खाने बैठ गया। उस दिन उसका लड़का पढ़ने गया था और वह समय से पहले लौट आया। लड़के ने कहा कि मेरे पेट में बहुत दर्द हो रहा है। खाने के पश्चात् भी जब नहीं ठीक हुआ तो वह उसे अस्पताल ले कर चला गया। अस्पताल वालों ने कहा कि इसे दिल्ली ले जाओ, यह हमारे बस का नहीं है (यह घटना भटिंडा की है)। जब वह घर आया तो लड़का दर्द से तड़पे, चिल्लाये और ऊपर उछले तो उसे ध्यान आया कि बकरा ऐसे ही तड़प रहा था। रात में दस बजे ट्रेन थी लेकिन नौ बजे लड़का खत्म हो गया और उसे लगा कि जैसे बकरा तड़प-तड़प कर मरा था वैसे ही मेरा लड़का तड़प कर मरा है। उसने निश्चय किया कि यह मेरे पाप का परिणाम है, तेरह साल का उसका लड़का था और उस दिन से उसका माँस-मदिरा सब कुछ छूट गया। मेरे पास वह आया करता था, लोग उसको अजामिल कह कर पुकारते थे क्योंकि जन्म से ब्राह्मण था और जीवन राक्षसों जैसा था। जब मेरे पास आया तो रामनामी ओढ़े हुए और हाथ में माला और थैली थी। मैंने कहा-क्यों भाई बंसी, यह क्या हुआ र ! कहा-गुरुदेव मैंने अपने सामने अपनी करनी का फल पा लिया। पहले सुना करते थे कि पिता का पाप पुत्र को खाता है और मैंने तो अपने सामने स्वयं देख लिया इसलिए मैं अब वह नहीं हूँ जो था। अब तो आप के सामने मैं पवित्र हो कर के बैठा हूँ।

मेरे कहने का अभिप्राय कि मनुष्य जो पाप-पुण्य करता है वह उसकी सन्तान के हिस्से में आता है क्योंकि **आत्मा वै जायते पुत्रः**। शास्त्र

यह कहता है कि पिता की आत्मा ही तो पुत्र के रूप में प्रकट होती है। परिणाम यह होता है कि पुण्य के द्वारा जो शुभ कर्म किया जाता है उसमें बाप को हिस्सा मिलता है इसलिए मृत्यु के पश्चात् जब पुत्र कोई शुभ कर्म करता है तो उसे श्राद्ध कहते हैं। हमारे यहाँ श्रद्धा और श्राद्ध ये दो अलग-अलग शब्द हैं। जीवित व्यक्ति के लिए जो सेवा की जाती है उसको श्रद्धा कहते हैं और उसी व्यक्ति के लिए मरने के पश्चात् जो कुछ किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं। श्रद्धा से ही श्राद्ध होता है लेकिन यह नहीं सोचना चाहिए कि यदि हम पूड़ी खिलाते हैं तो उसको पूड़ी मिलती है। यह तो मूर्खता है। उसका पुण्य मिलता है। वह पदार्थ नहीं मिलता, उसके दान का पुण्य मिलता है इसलिए हमारे यहाँ श्राद्ध की व्यवस्था है। वह यह तो पता नहीं आत्मा किसी अन्य योनि में है, जैसे आप बाहर से कोई पता लिख कर के पत्र भेजते हैं तो वह भारत में वहाँ मिल जाता है। कैसे मिल जाता है? कहा-यह तो सरकार की व्यवस्था है। अरे भले आदमी, जब इस सरकार की ऐसी व्यवस्था है तो वह सरकार जो परमात्मा के विधान में है वह ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं दे सकती? जब हम संकल्प करते हैं तो शब्द में शक्ति है। जब आप किसी आत्मा का चिन्तन करते हैं तो आप के मन की तरंगें वहाँ जाकर उसे स्पर्श करती हैं। आप नहीं जानते कि वह किस रूप में है लेकिन आपका मन जानता है कि वह किस रूप में है। सीमा में आप का शरीर है, सीमा में आप की इन्द्रियाँ हैं, मन आपका सीमा में नहीं है। यजुर्वेद के छः मन्त्र हैं जिनको हमारे यहाँ शिव संकल्प मन्त्र कहते हैं। आप उन मन्त्रों को पढ़िये तो आप को पता चलेगा कि मन की व्यापकता कितनी महान् है। उस मन्त्र का अन्तिम भाग है-**तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु**। अथर्ववेद में तो उसको और अधिक लम्बा बताया गया। ऋग्वेद में भी यही मन्त्र है। ऐसा मन यदि जाग्रत हो तो कहीं भी पहुँच

जाता है। ये मन, बुद्धि, चित्त सब पर्यायवाची शब्द हैं। ये सब एक दूसरे से मिले हुए हैं। अहं के प्रवाह का नाम ही मन है और बुद्धि में स्फुरित होने वाली जो चेतना है उसका नाम मन है और अहं की गति का नाम मन है क्योंकि घोर निद्रा में अहं बुद्धि में लीन हो जाता है वहाँ मन नहीं रहता इसलिए जब इस शरीर से अलग होता है तो सूक्ष्म शरीर उसके साथ जाता है। भगवान् ने गीता के पंद्रहवें अध्याय में कहा-

**मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति**।

जब इस शरीर से आत्मा निकलती है तो अपने साथ क्या ले जाती है? मन के सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ क्योंकि कर्मेन्द्रियाँ तो यहीं रह जाती हैं और कैसे ले जाती हैं तो कहा-**वायुर्गन्धानिवाशयात्**। जैसे यहाँ से वायु गुजरती हो और यहाँ पर गन्ध हो तो उसको भी साथ ले कर जायेगी और कोई दुर्गन्ध हो तो उसको भी साथ ले कर जायेगी। कहीं दूर आप हो तो आप को पता चलेगा कि जरूर वहाँ कोई गन्दी चीज़ है जिसकी दुर्गन्ध आ रही है या कोई बहुत अच्छी चीज़ है जिसकी सुगन्ध आ रही है। जैसे सुगन्ध और दुर्गन्ध वायु ले जाती है ऐसी ही आत्मा इस शरीर को छोड़ कर के मृत्यु के पश्चात् आप की पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन को साथ ले कर के जाता है और फिर आप की गति उसी प्रकार की होती है- **या मति सा गति**। जैसी आपकी मति होगी वैसी ही आप की गति होगी। यदि मति शुद्ध है तो आपको शुभ गति मिलेगी, यदि अशुद्ध है तो अशुभ गति मिलेगी। यदि आपकी मति भ्रष्ट है-शराब पीने वाले जिनको अपनी ही होश नहीं है, मदिरा में जो मदहोश पड़े हुए हैं, उनको अपना ही पता नहीं है, ऐसी स्थिति में उनका शरीर छूटेगा तो किस योनि में जायेंगे? जहाँ घोर अन्धकार है- **असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः**।। वेद कहता है कि वे आत्महत्यारे हैं। ऐसे आत्महत्यारे उस योनि को प्राप्त

करते हैं जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं है। घोर अन्धकार के द्वारा आवृत्त जो योनियाँ हैं, जहाँ ज्ञान का नाम निशान नहीं है, ऐसी योनियों को वे लोग प्राप्त होते हैं जो आत्महत्यारे हैं। आत्महत्यारे माने जो धन के नीचे अपनी आत्मा को दबा रखे हैं, जो भोग के नीचे अपनी आत्मा को दबा रखे हैं, जो अज्ञान के नीचे अपनी आत्मा को दबा रखे हैं, जिनको अपनी आत्मा का गौरव नहीं है। जिनको अपनी आत्मा का भान नहीं है, वे आत्महत्यारे हैं, जो विषयों में लिप्त होकर के आत्मा की महत्ता को भूल जाते हैं, उनको आत्महत्यारा कहा जाता है। ऐसे आत्महत्यारे उन अधम योनियों को प्राप्त होते हैं। मृत्यु के पश्चात् ये गतियाँ हैं।

इतना ही नहीं बहुत सी आत्मायें हैं जो मृत्यु के पश्चात् दूसरी योनियों में जाती हैं और वहाँ उनको ज्ञान होता है कि मैं अमुक घर से अमुक शरीर छोड़ कर के यहाँ आई हूँ। उनको पता होता है, वो जानती हैं, उनकी स्मृति बनी रहती है लेकिन आप सोचिये कि कैसी स्मृति बनी रहती है। विज्ञान की तरफ जाइये-आत्मा यहाँ से धूम्रलोक को प्राप्त हो गयी। अर्चिलोक को गयी तो तुरन्त नहीं आयेगी, वह तो सूर्य मण्डल से पार जाकर, दिव्यलोक या स्वर्गलोक जिसे कहते हैं वहाँ जायेगा लेकिन धूम्रमार्ग से जो जाता है, वह चन्द्र लोक से जाता है और चन्द्रमा की गति जो है वह इस पृथ्वी से लगी हुई है और वहाँ से वह पुनः बादलों में आकर कर वृष्टि के रूप में पृथ्वी पर आयेगा और फिर किसी पदार्थ में प्रवेश करके अन्न रूप में परिणत हो जायेगा। यदि उसे पशु योनि में जाना है तो घास पात बन जायेगा। मनुष्य योनि में जाना है तो मनुष्य जो कुछ खाता है उस में चला जायेगा, राक्षस योनि में जाना है तो वह माँस मदिरा के रूप में पहुँच जायेगा। जायेगा वह इन पदार्थों के रूप में ही।

भोजन शरीर में जाकर हज़म होता है तो तीन चीज़ें बनती

हैं-मल, मूत्र और रस। मल और मूत्र तो बाहर निकल जाता है केवल रस रह जाता है। रस जब जाकर के oxygen के साथ मिलता है तो उसमें red corpuscles पैदा हो जाते हैं और उसका रंग बदल कर के लाल हो जाता है जिसे हम रक्त कहते हैं। अब रक्त की गति जब शरीर में चलती है तो उसी से माँस पैदा होता है। उस रक्त में जो स्थूल भाग है वह माँस रूप में परिणत हो जाता है और उसी में जो चिकनाई वाला भाग है वह मेद रूप में बदल जाता है, उसी में जो फासफोरस आदि पदार्थ हैं वे हड्डी रूप में चले जाते हैं। अब हड्डी के अन्दर एक पदार्थ होता है जिसे marrow कहते हैं और हमारी भाषा में उसे मज्जा कहते हैं। मज्जा की जब परिपक्वता होती है शरीर में ऊष्णता के द्वारा पकते-पकते उसका रस बन जाता है तो उसको वीर्य कहते हैं। स्त्री में रज बनता है और पुरुषों में वीर्य बनता है। वीर्य में होते हैं स्पर्म लेकिन स्त्री के माध्यम से आत्मा नहीं जाती, यह भी याद रखना। याद रखिये कि आत्मा सदैव पुरुष के शरीर से प्रवेश करती है। स्त्री के रज में आत्मा निवास नहीं करती। अब वह जब पुरुष के शरीर में जाती है तो वीर्य में जीवाणु होते हैं जिनको वैज्ञानिक भाषा में sperm कहते हैं और sperm के अन्दर chromosomes होते हैं और chromosomes की संख्या होती है 22। नारी में भी chromosomes होते हैं लेकिन उसमें केवल 22 एक्स (x) ही होते हैं पुरुष के chromosomes में 22 एक्स (x) के साथ 22 वाई (y) भी होता है। अब यदि 22 एक्स (x) रहा तो उससे कन्या पैदा होती है और यदि 22 वाई (y) हुआ तो पुत्र पैदा होता है लेकिन होता पुरुष से है। चेतना पुरुष के शरीर से स्त्री के गर्भ में जाती है। स्त्री का शरीर तो उसको पालता है, पोसता है, उसके शरीर का निर्माण करता है लेकिन उसमें जो चेतना प्रवेश करती है वह पुरुष के शरीर से करती है इसीलिए शास्त्रकारों ने

प्रमाणित किया कि **आत्मा वै जायते पुत्रः**। पिता की आत्मा ही चेतना रूप में पुत्र रूप में परिणत हुई।

अब इसमें आप देखिये कि आहार का कितना बड़ा महत्त्व है और सैक्स का कितना बड़ा महत्त्व है। यदि आपके सैक्स की पवित्रता है, आपके आहार की पवित्रता है तो परिणाम क्या होगा? सतोगुणी सन्तान उत्पन्न होगी, यदि राजसिक हैं तो रजोगुणी सन्तान उत्पन्न होगी, यदि तामसिक व्यक्ति हैं तो तमोगुणी सन्तान उत्पन्न होगी। यह आपके ऊपर निर्भर करता है कि किस प्रकार का आप आहार करते हैं, किस प्रकार का आप विहार करते हैं, किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, यह आपके ऊपर निर्भर करता है। वैदिक साहित्य में संतान उत्पन्न करने की सारी विधियाँ बताई गई हैं। अभी आज लोग खोज रहे हैं कि हमें ऐसी व्यवस्था देनी चाहिए कि जिस से लोगों को पता चल जाये लेकिन वैदिक साहित्य में इसकी सारी व्यवस्था है। बृहदारण्यक उपनिषद् के आखिरी अध्याय में सारा विवेचन किया गया है विस्तार के साथ कि उत्तम सन्तान कैसे पैदा की जाये। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि वह जीवात्मा जो सन्तान रूप में पैदा हुई है, किस रूप में गई है? पशु में जायेगी तो पशु रूप में पैदा होगी, मनुष्य में जायेगी तो मनुष्य रूप में पैदा होगी, कीट-पतंग में जायेगी तो उसी रूप में पैदा होगी। अब जिस प्रकार के उसके कर्म हैं, उसी प्रकार की योनि में तो जायेगी। यह ईश्वरीय विधान है और यह विधान ऐसा प्रबल है कि जीव के कर्मानुसार उसे उस दिशा में प्रवेश करा देता है इसीलिए ईश्वर का एक नाम विधाता है। विधाता माने विधानकर्ता। ईश्वरीय शक्ति जो है वह विधानकर्तृ शक्ति है इसलिए उसे विधाता कहते हैं। विधाता के हाथ में वह है जो आपने कर्म किया है, उसके अनुसार फल दे। कर्म विधाता के हाथ में नहीं है। कैसा कर्म करते हैं, यह आपके

ऊपर निर्भर करता है लेकिन कर्म का परिणाम क्या होगा यह आपके ऊपर निर्भर नहीं करता। आप मद्यपान कर सकते हैं, यह आप के ऊपर निर्भर है और आप भगवान् का चरणामृत ले सकते हैं यह भी आपके ऊपर निर्भर है लेकिन दोनों का परिणाम क्या होगा यह आपके ऊपर निर्भर नहीं है। यह तो उस नेचर के ऊपर निर्भर है या विधाता के ऊपर जिसने विधान बनाया है। वेद में इसके लिए दो शब्द हैं-सत्य और ऋत। सत्य वह तत्त्व है जो सत्तात्मक है और ऋत वह तत्त्व है जो गत्यात्मक है। ऋ गतौ-गत्यात्मक होने के नाते उस सत्य का जो नियम है उसको ऋत कहते हैं। उसी ऋत को हमारे यहाँ धर्म भी कहा जाता है। उस सत्य का जो गुण है उसे धर्म कहते हैं। जैसे आप जानते हैं कि every thing has its own quality, its own property और इनका समवाय सम्बन्ध कहा जाता है। जब तक वह पदार्थ रहेगा उनका धर्म रहेगा। यह जो स्थिति है वेद में, उस विषय में यह बात समझाई गई है कि आप अपने कर्मानुसार ही मृत्यु के पश्चात् गति को प्राप्त करते हैं। विधाता का उसमें विधान है, उसमें फेरबदल नहीं करता क्योंकि उसका किसी के साथ न तो मोह है और किसी के साथ न द्वेष है-**न मे द्वेषोऽस्ति न प्रियः**। भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कहा है। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में भी इस विषय में बहुत कुछ लिखा है। जहाँ पर भुशुण्डी जी को उनके गुरु श्राप देते हैं, वहाँ पर कहते हैं कि -

**जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।**
**त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।**

(रा० 7/107-3)

एक हज़ार वर्ष तक वे तिर्यक योनि में रहते हैं। भुशुण्डी जी कहते हैं कि मैं सारी योनियों में घूमा हूँ लेकिन भगवान् शंकर की कृपा से

**जनमत मरत दुसह दुख होई।**

जनमते-मरते बहुत दुःख होता है लेकिन भगवान् शंकर की कृपा से मुझे वह दुःख मिला नहीं। जो जन्म मिलता था उसको अनायास ही त्याग देता था और आखीर में कहा कि एक हज़ार जन्म जब ले लिये तब मैं मुक्त हो गया तब मुझे ब्राह्मण का शरीर मिला लेकिन वहाँ पर मुझे पूर्व जन्म की सारी याद थी कि मैंने ये-ये कर्म किये थे और मुझे यह-यह योनि मिली। मेरे कहने का अभिप्राय कि कर्मानुसार ही फल मिलता है। तुलसीदास जी ने उत्तरकाण्ड में बताया कि किस प्रकार की योनियों में कौन लोग जाते हैं-

**हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई।**

(रा० 7/121-12)

जो भगवान् की निंदा करता है, गुरु की निंदा करता है वह मेंढ़क बनता है और एक हज़ार जन्म तक मेंढ़क बनता रहता है।

**द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि।**
**सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी।**

(रा० 7/121-12,13)

वह अनेक काल तक नरक में वास करता है और फिर कौआ हो कर संसार में पैदा होता है। इस प्रकार से उन्होंने अनेकों योनियों में जन्म लेने वाले जीवों की कहानी कही है। मेरे कहने का अभिप्राय कि मृत्यु के पश्चात् आपकी क्या गति होगी, आपका क्या जन्म होगा यह आपके कर्मों के ऊपर निर्भर करता है और मृत्यु के पश्चात् कुछ नहीं रहता, यह तो अज्ञानी लोग कहते हैं। ऋषियों ने, तत्त्वद्रष्टाओं ने इसको देखा है, वेद की यह घोषणा है कि जैसा कर्म तुम करोगे वैसा परिणाम तुम्हें मिलेगा। यदि आप मृत्यु के पश्चात् शुभगति प्राप्त करना चाहते हैं तो

आप शुभ कर्मों का अनुष्ठान कीजिये, यदि आप अशुभ गति को प्राप्त करना चाहते हैं तो अशुभ कर्मों में लग जाइये। तुलसीदास जी ने कहा कि यह मानव शरीर जो है, इसी से सब कुछ बनता है, यह बात याद रखिये। यदि एक कुत्ता है, वह यदि पशु का आहार करता है, जानवरों का आहार करता है तो वह पापी नहीं है क्योंकि वह तो उस योनि में भोगने गया है। ये तिर्यक योनियाँ जो हैं ये भोग योनियाँ हैं, कर्मयोनि नहीं है। पशु-पक्षियों की योनि यह कर्मयोनि नहीं है। देवताओं की योनियाँ जो हैं ये भोग योनियाँ हैं। शुभ कर्मों का फल भोगने के लिए ही देव योनियों में जाते हैं। पाप कर्म का फल भोगने के लिए ही तिर्यक योनियों में जाते हैं। केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है इसलिए यदि आप शुभगति प्राप्त करना चाहते हैं तो सत्कर्मों को अपने जीवन में प्रतिष्ठित कीजिये और मृत्यु के पश्चात् जो योनि होगी वह आपके कर्म के अनुसार होगी, उसमें भगवान् का कोई हस्ताक्षेप नहीं है, विधाता का कोई हस्ताक्षेप नहीं है-**या मति सा गति**-जैसी आपकी मति है वैसी आपकी गति होगी।

ये दो प्रकार की मृत्यु मैंने आपको बताई। मृत्यु माने शरीर से अलग होना, सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से अलग होना मृत्यु है, देहान्त नहीं होता। देहान्त का अर्थ तो अलग होता है क्योंकि देहान्त माने होता है मुक्ति। तीन देह हैं-स्थूल देह, सूक्ष्म देह और कारण देह। जब तीनों देहों का अन्त हो जाये तो उसे देहान्त कहते हैं। मृत्यु माने देहान्त नहीं, यह बात याद रखिये। उस समय आपके जीवन की क्या गति होगी, आपकी आत्मा की क्या गति होगी, यह आपकी मति के ऊपर निर्भर करता है। क्या कोई ऐसा रास्ता है जो इस आवागमन के चक्कर से हमेशा के लिए छूटा जा सके। क्या कोई ऐसा भी उपाय है जो मरने के बाद फिर मरना न हो। स्वर्ग गये फिर भी तो मरोगे आकर के- **क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं**

# मुक्ति

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आन्तरिक शुभ कामना। मुझे विश्वास है कि इसे आप लोग समझे भी होंगे और धारण भी किये होंगे। कल मैंने आप लोगों को बताया था कि मृत्यु के पश्चात् जीव की तीन गतियाँ होती हैं-एक ऊर्ध्वगति, दूसरी अधोगति और तीसरी मध्यगति। अधोगति में जीव नीचे की योनियों में जाता है। सृष्टि के तीन सर्ग हैं-देव सर्ग, मानव सर्ग और तिर्यक सर्ग। तिर्यक सर्ग का अभिप्राय होता है जिनके मुँह तिरछे होते हैं। जितने पशु हैं, पक्षी हैं, कीट-पतंगादि हैं, इन सब के मुँह तिरछे होते हैं। मानव सर्ग–आप लोग मानव हैं, आप लोग जानते हैं, आप की जड़ ऊपर की ओर है। देव सर्ग में स्थूल शरीर नहीं होता, दिव्य शरीर होता है। हमारी आपकी तरह उनको किसी पदार्थ के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वे अपने संकल्प से पदार्थों को ग्रहण करते हैं और दिव्य शरीर में रहते हैं। वहाँ तीन बातों के लिए भय नहीं होता-मृत्यु का भय, वृद्धावस्था का भय और रोग का भय। ये तीनों भय नहीं हैं वहाँ। न जरा, न मृत्यु-ये सब देवलोक में नहीं हैं। जितने दिन तक जीव को पुण्य का फल भोगना

है, उतने दिन तक भोग करके **क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**-जब उसका पुण्य क्षीण हो जाता है तो वह मर्त्यलोक में सूर्य की किरणों के माध्यम से बादल में आता है और बादल से वह वृष्टि के रूप में पृथ्वी पर आता है और फिर अन्न में जाकर वह किसी मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जन्म लेता है। यह चक्र उसका चलता है। यह जो मानव शरीर है, यह मध्य लोक में है, यह मरने के बाद सूर्य लोक में नहीं जाता, चन्द्रलोक जाता है और बादल के द्वारा ही इस प्रकार से नये जीवन को प्राप्त करता है। ये प्रक्रियाएं हैं देव सर्ग, मानव सर्ग और तिर्यक सर्ग तीन लोकों की।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या इस चक्र से छूटने का कोई रास्ता नहीं है? देवसर्ग भी तो कुछ काल बाद इसी प्रवाह में आता है। भगवान् ने कहा-

**एवं त्रयीधर्म मनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते।**

(गीता 9/21)

वे भी कुछ काल के लिए देवता भले बन जायें लेकिन बाद में पुनः इस मनुष्य शरीर में आना पड़ता है अर्थात् मर्त्यलोक में आना पड़ता है। कर्मभूमि तो यही है, देवलोक कर्मभूमि नहीं है, तिर्यकलोक कर्मभूमि नहीं है। जो आत्माएं अपने बुरे कर्मों के प्रभाव से तिर्यक योनि में जाती हैं, वे भी धीरे-धीरे अपना पाप धो कर के मनुष्य योनि में आती हैं क्योंकि कर्मभूमि यह है और धर्मभूमि भी यह है। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि सदा-सदा के लिए इस जन्म-मरण के प्रवाह से मुक्त हो जायें? कहा-है। वह क्या है? जो मुक्ति शब्द का प्रयोग है, वह मुक्ति किससे है? इस आवागमन के चक्र से, यह जो जन्म-मरण का चक्र चल रहा है, इस चक्र में पुनः आना न पड़े? जिसके लिए वेद कहता है -

**न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते।**

पुनः उसे नहीं आना पड़ता। यही गीता में भगवान् ने कहा-

**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।**

(गीता 15/6)

जहाँ जाकर के पुनः नहीं आना पड़ता, वह मेरा परम धाम है। भगवान् के उस परमधाम को प्राप्त करने का और इस आवागमन के चक्र से सदा के लिए मुक्त होने का क्या उपाय है ? शास्त्रकारों ने उस पर बहुत अधिक विचार किया है। हमारे यहाँ चार प्रकार के शास्त्र हैं वा शास्त्र चार रूपों में विभाजित किये हैं क्योंकि मनुष्य केवल शरीर नहीं है, केवल आत्मा भी नहीं है, आत्मा और शरीर के योग से मनुष्य बनता है और मनुष्यता का जन्म होता है। यह मनुष्यता जो है वह केवल इसी चक्र में घूमने के लिए नहीं है। इसका एक प्रयोजन है। इस प्रयोजन की पूर्ति इस मनुष्य जन्म में ही हो सकती है अन्यथा नहीं हो सकती। मनुष्य के लिए चार प्रकार के प्राप्तव्य बताये गये हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सनातन धर्म में इन चारों की प्रतिष्ठा की गई है। ये चारों अलग-अलग हैं, ऐसी बात नहीं है। धर्म वह विधान है जिस विधान में रह कर के मनुष्य अर्थ का संचय करता हुआ अपनी कामना को पूर्ण करते हुए मोक्ष के रास्ते पर आगे बढ़ता है। यह तो आप जानते हैं न कि जब आप कहीं जाना चाहते हैं तो उसके लिए चार प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है। एक तो कहाँ जाना है इसका पता होना चाहिए, पहली बात, दूसरी बात किस रास्ते से जाना है, उसका पता होना चाहिए, तीसरी बात -साथ में कौन होगा इसका पता होना चाहिए क्योंकि शास्त्र कहता है-**एकाकी मा गच्छेत्**। यात्रा के लिए अकेले मत चलो। तो साथ कौन होगा यह तीसरा प्रश्न है और रास्ते के लिए सामग्री क्या चाहिए, यात्रा में किन-2 वस्तुओं की आवश्यकता होगी? यदि इन चारों से अनभिज्ञ होकर के आप यात्रा करते

हैं तो आप अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच पायेंगे। यह शास्त्र का सन्देश है। सबसे पहले लक्ष्य क्या है यह बताया गया। लक्ष्य है मोक्ष। कहा- उसके लिए वहाँ किस-किस चीज़ की आवश्यकता होती है? कहा-अर्थ की। लेकिन अर्थ की पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ भी चाहिए? कहा-हाँ, साथी चाहिए। बिना साथी के आप यात्रा ठीक रूप से नहीं कर सकते। साथी किस प्रकार का चाहिए? यहाँ पर आकर गाड़ी अड़ गई। साथी दो प्रकार के होते हैं। अब उन दो प्रकार में से जिनका केवल मोक्ष ही लक्ष्य है, उनका साथी गुरु होता है। बिना गुरु के वह एक कदम उस रास्ते पर आगे नहीं चल सकता लेकिन जिसको मोक्ष नहीं चाहिए अभी, जिसके दिमाग में मोक्ष नहीं है, मोक्ष की आवश्यकता नहीं है, उसे एक साथी की आवश्यकता होती है, वह कैसा साथी है? जो रास्ते में आने वाली आपत्तियों से बचा सके। रास्ते में दो प्रकार की आपत्तियाँ आती हैं, एक काम की आपत्ति आती है और दूसरे लोभ की। काम और लोभ, ये दो प्रकार के डाकू रास्ते में आयु रूपी धन को छीनने के लिए दौड़ते हैं। उसके लिए हमारे यहाँ विवाह की व्यवस्था की गई है। कहा कि स्त्रियां के लिए बढ़िया साथी पुरुष है और पुरुष के लिए अच्छा साथी स्त्री है। सनातन धर्म में जब विवाह किया जाता है तो वहाँ पर वेद के मन्त्र पढ़े जाते हैं और उन मन्त्रों का जो अर्थ है वह मैं आपको बता रहा हूँ। वहाँ पर वर के लिए जिसे हम लोग दूल्हा कहते हैं कि तुम नारायण हो और दुल्हन के लिए लक्ष्मी कहा जाता है। लक्ष्मी-नारायण दोनों मिल कर के तब पूर्ण शक्ति मिलेगी और तुम एक दूसरे की सहायता करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचो। विवाह का लक्ष्य तो है मोक्ष।

भारतीय जीवन विधान में विवाह का उद्देश्य भोग नहीं है, मोक्ष है। उस मोक्ष तक पहुँचने के लिए जिस प्रकार के साथी की जरूरत होती

है, यदि धर्मपत्नी साथ है तो काम अपना प्रभाव नहीं जमा सकता, उसकी पूर्ति हो जायेगी और धर्मपत्नी यदि साथ है तो लोभ के चक्र में वह नहीं पड़ेगा क्योंकि वह धर्मपत्नी है अर्थात् धर्म की रक्षिका। यह तो आप जानते हो कि धर्मपत्नी का अर्थ होता है धर्म की रक्षिका। धर्म के मार्ग पर चलने वाले की रक्षा करने के लिए उसने जो साथी चुना है उसको हमारे यहाँ धर्मपत्नी कहा गया। इसका अभिप्राय है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों में मोक्ष प्राप्तव्य है, धर्म साधन है, काम साधन है और अर्थ साधन है। ये सब साधन हैं। धर्म रास्ता है तथा काम और अर्थ दोनों साधन हैं। जैसे आदमी चलते हुए थक जाता है, निर्बल हो जाता है, हताश हो जाता है, उस अवस्था में कौन काम आता है, आप जानते हो? अभी हमारे ये लड़के गा रहे थे राणा प्रताप का नाम ले करके, शिवा जी का नाम लेकर के। आपने सुना होगा कि राणा प्रताप 20 वर्ष तक जंगल में रहे, राज्य से च्युत हो गये थे, उनके पास खाने को कुछ नहीं था तो घास इकट्ठा कर के उसको मसल कर उसकी रोटी बनाये और उसे खाने के लिए अपनी लड़की को दिया, इतने में बिल्ली आई और झटक कर के ले गई। जब रोटी बिल्ली ले कर चली गई तो राजकुमारी रोने लगी। उसे रोते देख उनका हृदय काँप गया, उन्होंने कहा कि ऐसे स्वाभिमान से क्या लाभ है जो अपने बच्चे को रोटी तक न दे सके। मेरी पुत्री को आज घास की रोटी भी नसीब नहीं हो रही। उन्होंने निश्चय किया कि अब मैं अकबर से सन्धि कर लूँगा। उनका अकबर से युद्ध चल रहा था और अकबर कहता था कि तुम केवल यह मान लो कि मैं भारत का सम्राट हूँ, जो तुम माँगोगे, मैं तुम्हें देने के लिए तैयार हूँ। हम तुम्हें पूरा राजस्थान का राज्य दे देंगे, तुम हमें सम्राट मान लो लेकिन राणा प्रताप कहते थे कि तुम तुर्क हो और तुम विदेशी हो, तुम भारत के सम्राट कभी नहीं बन सकते और न

तुम्हें मैं कभी भारत का सम्राट स्वीकार कर सकता हूँ। जब अपनी बच्ची की गति देखी तो राणा प्रताप ने निश्चय किया कि यही तो मानना है कि वह भारत का सम्राट है, हम स्वीकार कर लेते हैं। अपनी पुत्री को दुःखद अवस्था में देख कर उन्होंने कागज़ लिया और पत्र लिखना शुरु किया। जब पत्र लिख रहे थे तो उनकी स्त्री बगल में खड़ी देख रही थी कि क्या लिख रहे हैं। जब लिख लिये और अपने दूत को बुलाये कि यह पत्र अकबर के दरबार में दे आओ तो उनकी स्त्री ने पूछा कि यह पत्र किसको लिखा है? कहा-अकबर को। कहा-क्या लिखा है? कहा-सन्धिपत्र है। उसने कहा कि आप अपनी एक पुत्री के दुःख को नहीं देख सके लेकिन आपके साथ युद्ध में जिन जवानों ने हज़ारों की संख्या में अपनी जानें दी हैं, उनकी पुत्रियों का कभी ख्याल आया आपको? उनकी स्त्रियों का कभी ख्याल आया आपको? वे किस अवस्था में होंगी, कभी सोचा आपने? शर्म की बात है, जिस मातृभूमि के गौरव की रक्षा के लिए हज़ारों लोगों ने बलिदान दिया क्योंकि तीन बार युद्ध हो चुका था और हज़ारों स्त्रियाँ विधवा हो गईं थी, हज़ारों बच्चों के बाप नहीं रहे, हज़ारों मायें पुत्रविहीन हो गईं, क्या उनके विषय में कभी सोचा आपने? एक आपकी पुत्री को भोजन नहीं मिला, यदि वह भूखी मर भी जाये तो क्या अन्तर पड़ता है? क्या मातृभूमि के गौरव से अधिक मूल्यवान् है वह? अब उनको होश आया और कहा देवी! आज तूने मुझे गिरने से बचा लिया और तुरन्त पत्र फाड़ कर फेंक दिया वहीं। कहने का अभिप्राय इसको कहते हैं धर्मपत्नी, धर्म की रक्षा के लिए जो सदैव तत्पर रहे। कभी उसने यह नहीं कहा कि क्यों मिथ्या अभिमान में पड़े हो, इतना बड़ा राज्य दे रहा है तुम्हें, राज्य ग्रहण करो। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि यदि सही में धर्मपत्नी है तो तुम्हारे धर्म की रक्षा करने में वह सक्षम होगी, तुम्हारा

रास्ता अकंटक होगा और तुम उसके साथ मोक्ष के रास्ते पर आगे बढ़ जाओगे, इसमें सन्देह नहीं।

धर्म ही मोक्ष का रास्ता है, इसमें सन्देह नहीं। काम और अर्थ-ये तो केवल साधन हैं उस रास्ते के। जैसे आदमी जब थकता है तो विश्राम करता है न! तो विश्राम के लिए साधन है काम और जब चलता है तो उसे खाने पीने की आवश्यकता होती है तो उसके लिए साधन है अर्थ। ये दो साधन हैं, लक्ष्य नहीं हैं जीवन का। दुर्भाग्य तो मनुष्य का है इस समय कि उसने साधन को लक्ष्य मान रखा है। आज कल देखिये, कभी कोई सोचता है कि उसके जीवन का लक्ष्य मोक्ष है या पूर्णता की प्राप्ति है? मोक्ष माने perfection. Perfection of life is called moksha जीवन की पूर्णता का नाम ही मोक्ष है। यह आप लोग जानते हो? मैं एक उदाहरण के द्वारा आप लोगों को समझा रहा हूँ। यह एक point है जिसको mathematics में dot कहते हैं। अब इस में यदि कहीं गति शुरु हुई तो उसका कहीं अंत है? कहीं अंत नहीं है। चाहे जितनी बार उसे घुमाते रहो, कहीं अंत नहीं उसका। अंत है, केवल एक स्थान पर, कहाँ है? जहाँ से वह शुरु हुआ है। If that line will reach that point from where it started, that is the end. यदि वह उसी स्थान पर पहुँच जाये तो उसका अंत हो जायेगा। फिर वह क्या बन जायेगा? वही zero. point भी zero कहा जाता है और वह गोला भी zero कहा जाता है। उस zero को कहते हैं पूर्ण। यह जीवात्मा जो है, यह जहाँ से चला है, जिस point से चला है और जिस शरीर में आकर के अभिव्यक्त हुआ है, यह अनेकों बार चौरासी लाख योनियों में चक्कर काटता रहा लेकिन कभी भी पूर्ण नहीं हो सका। इसकी पूर्णता केवल उस अवस्था में होगी जब जहाँ से चला है वहीं पहुँच जायेगा। जब वहाँ पहुँच जायेगा तो

कहा जायेगा कि पूर्ण हो गया और उसी को कहेंगे मुक्ति। किससे मुक्ति मिली? उस चक्र से, घूमने से। अब घूमने से छुटकारा मिल गया, जहाँ से उसका जीवन प्रारम्भ हुआ था वहीं पहुँच गया। कहाँ से प्रारम्भ हुआ था? परमात्मा से, उस परम सत्ता से, उस परम चैतन्यघन से, सच्चिदानन्द से। जो प्रकृति से परे है, उस परम तत्त्व से इसका प्रारम्भ हुआ है और यह जब उसी परम तत्त्व तक पहुँच जायेगा तो इसका घूमना समाप्त हो जायेगा और इसको कहते हैं मुक्ति। यह मुक्ति का अर्थ है और दूसरे शब्दों में मुक्ति माने perfection पूर्णता। इसके लिए एक मन्त्र है वेद में-

**यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।**

जैसे नदियाँ हिमालय से चलती हैं हिमालय क्या है? abode of water और समुद्र क्या है? abode of water. वह भी जल का ही घर है और यह भी जल का ही घर है। यह बात सभी जानते हैं कि हिमालय जो है यह समुद्र से ही बाहर आया है। यह कोई दूसरी वस्तु तो है नहीं और वहीं से नदी चलती है और नदी का दौड़ना कब बन्द होता है? जब वह समुद्र से मिल जाती है। कहा-जैसे नदियाँ दौड़ कर के समुद्र में मिलती हैं तो उनका नाम और रूप दोनों खत्म हो जाता है, गंगा गंगा नहीं रह जाती, फिर क्या हो जाता है? सागर बन जाती है।

**तथा विद्वान् नाम रूपाद् विमुक्तात् परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।**

इसी रूप से जब यह जीवात्मा परमात्मा तक पहुँच जाता है तो इसका नाम रूप समाप्त हो जाता है, यह परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर लेता है और परमात्म स्वरूप प्राप्त करने को ही कैवल्य कहते हैं। कैवल्य का अर्थ ही यही होता है।

**पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं**
**स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।।**

जब चित् शक्ति या चेतना जो है अपने कारण में लीन हो जाती है तो उसे कैवल्य कहते हैं और इसी को मुक्ति कहते हैं। अब आप देखिये कि जीवन का जो लक्ष्य है, जहाँ पहुँचना है, वहाँ न पहुँच करके इधर-उधर भटकना जो है, कभी स्वर्ग में, कभी नरक में, कभी मृत्युलोक में, यह तो उचित नहीं है, यह अभीष्ट नहीं है लेकिन मनुष्य इसी में भटकता रहता है। तुलसीदास जी के शब्दों में-

**आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।**
**फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल करम सुभाव गुन घेरा।।**

(रा० 7/44-2,3)

मनुष्य शरीर जब प्राप्त करता है तो इसी में उसको यह सुविधा मिलती है जिसको मुक्ति कहते हैं। अब आप लोग मुक्ति का अर्थ समझ गये होंगे। मुक्ति के विषय में बहुत लम्बी व्याख्या है लेकिन संक्षेप में मैंने आप लोगों को समझा दिया।

वाण कहते हैं दुःख को, **वाणं दुःखम्** और निर्वाण कहते हैं दुःख रहित अवस्था, जहाँ दुःख के लिए स्थान न हो। दुःख के तीन कारण हैं-अज्ञान, अभाव और भय। सारे दुःखों के मूल कारण यही तीन हैं। इन तीनों से मनुष्य को दुःख मिलता है। अज्ञान में दुःख मिलता है, अभाव की अनुभूति में दुःख मिलता है और भय से दुःख मिलता है। भय किसका? अप्रिय के योग का भय और प्रिय के वियोग का भय। जिनको हम चाहते हैं वे हमसे अलग न हो जायें, इसका भय और जिसको हम नहीं चाहते कहीं वो मिल न जाये, इसका भय। तो अप्रिय के संयोग का भय और प्रिय के वियोग का भय। अभाव का कारण क्या है? अभाव का कारण है स्वयं में कमी महसूस करना जिसको अंग्रेजी में lackness कहते हैं। कमी महसूस क्यों होती है, जानते हो? सीमा के नाते। यदि हम सीमा से मुक्त हो

जायें तो हमारे में कमी के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा क्योंकि प्रकृति तो पूर्ण है, उसमें तो कोई कमी है नहीं और परमेश्वर तो स्वयं में पूर्ण है वहाँ भी कोई कमी नहीं है। प्रकृति और पुरुष दोनों अनन्त हैं, कहीं कमी नहीं है, फिर कमी कहाँ से आ गई? प्रकृति और पुरुष के योग से जो तीसरा पैदा हुआ है जीवात्मा, वह कमी अनुभव करता है। जब तक जीवात्मा रहेगी यानी जीवात्मा के रूप में आत्मा रहेगी तब तक उसे कमी महसूस होगी और उसको कभी दूर नहीं किया जा सकता। कमी कब जायेगी? जब आत्मा अपने कारण को जान जायेगी और जिस शरीर में वह आसक्त है, जिस प्रकृति में आसक्त है, जिससे identified है उससे अपने आप को अलग समझ ले। वहाँ कोई कमी नहीं रह जायेगी। दुःख का कारण समाप्त हो जायेगा। तो दुःख से मुक्ति के लिए उपाय केवल यही है कि वह जिस सीमा से बँधा है उस सीमा से मुक्त हो जाये। सीमा में रहकर के ही उसके लिए इष्ट और अनिष्ट की कल्पना है। यह प्रिय है, यह अप्रिय है, यह किसके द्वारा कल्पित है? सीमा के द्वारा और सीमा में क्यों आ गया वह? अज्ञान के द्वारा। तो अज्ञान, सीमा और भय, ये तीन दुःख के कारण बन गये इसीलिए वेद कहता है कि **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**-जब तक ज्ञान का प्रकाश नहीं होगा तब तक अज्ञान दूर नहीं होगा और जब तक अज्ञान दूर नहीं होगा तब तक तुम सीमा में बँधे रहोगे और जब तक सीमा में बँधे रहोगे तब तक तुम्हें अभाव की अनुभूति होगी। जब तक अभाव की अनुभूति होगी तब तक तुम्हारे लिए कोई प्रिय होगा, कोई अप्रिय होगा और जब तक प्रिय और अप्रिय बना है, तब तक भय बना रहेगा। ये तीनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं इसलिए मूल कारण है अज्ञान को दूर करना।

**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिदमुच्यते।**

इस ज्ञान के प्रकाश में ही मनुष्य तीनों प्रकार के कारणों को सदा

के लिए समाप्त कर देता है। ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान नष्ट होता है, ज्ञान के प्रकाश में ही सीमा नष्ट होती है, ज्ञान के प्रकाश में ही भय नष्ट होता है। ये तीनों ज्ञान के प्रकाश में चले जाते हैं और आदमी इन तीनों प्रकार के भयों से, दुःख से छुटकारा पा जाता है जिसको मुक्ति कहते हैं। आप इससे समझ गये होंगे कि जीवन में मुक्ति का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप यह भी समझ गये होंगे कि जीवन का सही उद्देश्य मोक्ष है। उसी को हमारे यहाँ परम पदार्थ, परम फल कहते हैं। चार पदार्थ हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। उसमें मोक्ष परम पदार्थ है, उसको परम पुरुषार्थ कहते हैं जिस मोक्ष की सरल रूप में यह व्याख्या आपको बताई है।

भगवान् राम अध्यात्म रामायण में लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं कि लक्ष्मण तुम यह न समझना कि आदमी मुक्त हो जायेगा तो किसी लोक विशेष में जाकर रहेगा। इस गाँव से छूट कर उस गाँव में जाओगे तो यह भी भ्रान्ति है तुम्हारी। कहा-तो फिर? कहा कि अविद्या का जो साम्राज्य है वह यदि नष्ट हो जाये तो तुम मुक्त हो गये और जो ज्ञान के प्रकाश में स्वयं को जान गया वह जीते जी मुक्त है। यह नहीं कि मरने के बाद मुक्त होगा। जो जीते जी मुक्त नहीं है वह मरने के बाद कभी मुक्त नहीं होगा इसीलिए भगवान् ने गीता के दूसरे अध्याय के अन्त के श्लोक में कहा-

**एषा ब्राह्मी स्थिति पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**
**स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।**

(गीता 2/72)

यह ब्राह्मी स्थिति जो प्राप्त कर लिये हैं उसको प्राप्त करने के पश्चात् फिर मोह में आबद्ध नहीं होता और यदि यह स्थिति अन्तकाल में भी प्राप्त हो जाये तो वह ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करता है। ब्रह्मनिर्वाण माने ब्रह्म में लीन होना। वाणं दुःखं-वह दुःख से मुक्त हो जाता है, ब्रह्मनिर्वाण

को प्राप्त हो जाता है। मैं आप लोगों को केवल यह बताना चाहता था कि मुक्ति का अर्थ कहीं यह न समझ लेना कि यहाँ से मर कर के कहीं दूसरी जगह जायेंगे तब मुक्ति होगी या मरने के बाद मुक्ति मिलेगी। मुक्ति जीते जी मिलती है। तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है-

**अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।।**
**राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं।।**
**भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी।।**

(रा० 7/119-2,5)

आप भोजन करते हैं भूख को शान्त करने के लिए लेकिन भोजन के साथ दो प्रकार की प्रक्रियाएं अपने आप हो जाती हैं। क्षुधा निवृत्ति के साथ तुष्टि और पुष्टि अपने आप हो जाती है। जैसे खाये हुए पदार्थ को जठराग्नि हज़म करती है लेकिन जठराग्नि के साथ शरीर में ताकत आ जाती है और मन तृप्त हो जाता है। इसी प्रकार से जब आप भगवान् की भक्ति करते हैं तो मुक्ति माने आवागमन के चक्कर से छुटकारा अपने आप मिल जाता है क्योंकि परमात्मा से एकता का नाम ही तो मुक्ति है।

**सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।**

(रा० 4/14-4)

नदियों का जल समुद्र में जाकर शान्त हो जाता है, ऐसे ही जब जीव परमात्मा में लीन हो जाता है तो शान्त हो जाता है, अचल हो जाता है। यही मुक्ति का स्वरूप है। जीवात्मा का परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाना और जीते जी जीवात्मा में परमात्म भाव की अभिव्यक्ति।

**बहवो ज्ञान तपसा पूता मद्भावमागताः।**

(गीता 4/10)

भगवान् कहते हैं कि बहुत सी जीवात्मायें ज्ञान के प्रकाश में मेरे भाव को प्राप्त हो गयी हैं।

**इदं ज्ञानमुपाश्रित्य ममसाधर्म्यमागताः।।**

मनुष्य मेरे भाव को प्राप्त हो जाता है। वह सर्ग में उत्पन्न नहीं होता और न ही प्रलय में नाश को प्राप्त होता है। वह आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है। तो भगवद् प्राप्ति जिसे अंग्रेजी में godhood कहते हैं, ब्राह्मी स्थिति-ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठा जीवन मुक्ति का स्वरूप है और जो जीते जी मुक्त है वही मरने के बाद ब्रह्मलीन हो जाता है। यह मुक्ति का स्वरूप है।

संक्षेप में मैं बता रहा हूँ कि यह जो मुक्ति के कई भेद शास्त्रों में बताये गये हैं - इनका क्या अभिप्राय है? जैसे सालोक्य मुक्ति, सामीप्य मुक्ति, सारूप्य मुक्ति, साष्ट्री मुक्ति, कैवल्य मुक्ति। इस प्रकार से मुक्ति के भेद बताये गये हैं। इन भेदों का क्या अभिप्राय है? कहा-हमारे यहाँ मुक्ति के दो विभाग मानते हैं-एक तो ब्रह्म में लीन हो जाना। मुक्ति का यथार्थ स्वरूप तो ब्रह्मलीनता है। गीता उसी का प्रतिपादन करती है लेकिन इसके साथ मुक्ति के और भी भेद मानते हैं। ये भेद जो हैं ये भावना से सम्बन्धित हैं। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है-

**सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं।।**

(रा० 6/112-4)

जो भगवान् के सगुण उपासक हैं, वे मोक्ष लेना नहीं चाहते। वे परमात्मा में लीन होना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि यदि वे परमात्मा में लीन हो गये तो स्वाद नहीं मिलेगा, उनको भगवान् अपनी भक्ति देते हैं। एक प्रश्न है रामायण में। तुलसीदास जी ने लिखा है रामायण में-

**जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा।।**

वेद कहता है कि यदि मरते समय किसी के मुख से राम निकल जाये तो मुक्त हो जाता है।

**जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहुँ आवत नाहीं।**

जन्म जन्मान्तर के प्रयत्न के पश्चात्, एक दिन में नहीं होता कि मरते समय राम कह दो। मुनि लोग जन्म-जन्मान्तर तक प्रयत्न करते हैं अभ्यास करते हैं, तब अन्त समय में राम शब्द का उच्चारण करके शरीर त्यागते हैं और लौट करके नहीं आते। कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं कि अन्त समय राम राम कहना नहीं आता लेकिन यह उनकी नासमझी है। भला जो प्रयत्न करेगा, अभ्यास करेगा उसको अन्त में राम राम कहना नहीं आयेगा तो और क्या आयेगा? तुलसीदास जी कहते हैं कि जो अन्त में राम कहते हैं वे लौट कर नहीं आते और कोई अधम भी राम कह दे तो वह लौट कर नहीं आता। यहाँ एक प्रश्न आता है कि महाराज दशरथ छः बार राम राम कहे मरते समय -

**राम राम हा राम कहि राम राम कहि राम।**

(रा० 2/155)

क्योंकि राम मन्त्र जो है यह षटाक्षर मन्त्र है, इसको राम तारक मन्त्र कहते हैं, वह छः अक्षर का होता है और मोक्ष की प्राप्ति में वह मुख्य साधन माना गया है और उसको मन्त्रराज कहते हैं। वाल्मीकि जी ने भी कहा है-

**तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।।**
**तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।**
**सबु कर मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।**
**मन मंदिर तिन्ह के बसहु सिय रघुनंदन दोउ।।**

(रा० 2/120-3,4)

और भगवान् शबरी को उपदेश देते हुए कहते हैं-

**मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।**

(रा० 3/36-1)

भगवान् राम का मन्त्र जो है वह षटाक्षर है इसलिए तुलसीदास जी ने संकेत किया कि –

**राम राम हा राम कहि राम राम कहि राम।**
**तनु परिहरि रघुबर बिरह राउ गयउ सुरधाम।।**

(रा० 2/155)

छः बार महाराज दशरथ ने राम मन्त्र का उच्चारण किया लेकिन महाराज दशरथ ने शरीर छोड़ा तो मोक्ष को नहीं पाया, कहाँ गये? देव लोक को। यहाँ पूछा कि एक बार कोई राम कह दे तो वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है और महाराज दशरथ ने छः बार राम-राम कहा तो मोक्ष को क्यों नहीं पाया? पार्वती ने शंका की कि प्रभु यह आप क्या कह रहे हो? राऊ गयऊ सुर धाम? महाराज दशरथ स्वर्गलोक को चले गये। कहा-मोक्ष क्यों नहीं मिला? भगवान् शंकर ने समाधान किया कि

**ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो।।**
**सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं।।**

(रा० 6/112-3,4)

**राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं।।**

कहा कि महाराज दशरथ जो हैं ये सगुण उपासक हैं, निर्गुण उपासक नहीं है। मनु के रूप में भी जब इन्होंने घोर तपस्या की थी तब भी इन्होंने वरदान में यही माँगा था कि-

**चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ।**

(रा० 1/149)

**सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।।**

(रा० 1/151-3)

वहाँ पर भी उन्होंने सगुण भक्ति की ही याचना की थी। वे सगुण उपासक हैं भगवान् के और जो सगुण उपासक हैं वे मोक्ष नहीं लेते। भगवान् उनको अपनी भक्ति देते हैं और भक्ति के परिणाम स्वरूप चार प्रकार के मोक्ष की प्रतिष्ठा है। किस प्रकार की भक्ति कौन करता है और उसके लिए कौन सा पद मिलना चाहिए, यह उसमें निश्चित किया गया है। उसमें भक्ति के कौन कौन से पद हैं? कहा-चार प्रकार की भक्ति है और चार प्रकार के उसके लिए पद हैं। तुलसीदास जी ने कहा-

**राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा।।**
**चहुँ चतुरन्ह कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पियारा।।**

(रा० 1/22-3,4)

चार प्रकार की भक्ति है और चार प्रकार की भक्ति के लिए चार प्रकार के पद हैं-सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य। अब इनमें महाराज दशरथ जो थे, वे वात्सल्य भाव से युक्त हो कर के भगवान् को पुत्र रूप में चाहते हैं। कहीं कहीं पाँच प्रकार की भक्ति लिखी गई है। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण के प्रारम्भ में पाँच प्रकार की भक्ति बताई है -

**सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित।**

(रा० 1-14)

ये पाँच प्रकार की भक्ति भगवान् ने बताई है जिसको कहते हैं वात्सल्य भाव, मैत्री भाव, सख्य भाव, दास्य भाव और कान्ता भाव-ये पाँच भाव हैं भक्ति के और पाँच प्रकार के भाव के अनुसार भगवान् के साथ पाँच प्रकार का सम्बन्ध होता है। जैसे मीरा कृष्ण की पति भाव से

उपासना करती है, उसको कान्ता भाव कहते हैं-अपने आप को प्रभु की पत्नी मानना और प्रभु को अपना पति मानना। महाराज दशरथ भगवान् को वात्सल्य भाव से पूजते हैं, पुत्र भाव रखते हैं, भगवान् मेरे पुत्र बनें और मैं पिता रूप में उनका पालन करूँ,

**चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ।**
**सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।।**

(रा० 1/151-3)

कोई मूढ़ ही मुझे क्यों न कहे कि परमात्मा को अपना पुत्र मान रहा है लेकिन मैं आपको पुत्र ही मानूँ। भगवान् ने कहा-एवमस्तु, तुम मुझे अपना पुत्र मान लेना। भगवान् के यहाँ तो कोई अन्तर नहीं पड़ता, कुछ भी मान लें भगवान् को। हनुमान जी दास्य भाव के भक्त हैं-

**मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।**

(रा० 4/3)

यह हनुमान जी की भक्ति है और शबरी भी वात्सल्य भाव से भगवान् की उपासना करती है। मित्र भाव से भगवान् को भजने वाले अनेकों मिलेंगे आपको। केवट सबसे पहला था जो भगवान् को सखा रूप में मानता है क्योंकि भगवान् राम और केवट दोनों वशिष्ठ के आश्रम में एक साथ पढ़े थे। वह वहीं से उनको जानता है कि ये परमात्मा हैं किन्तु मित्र मानता है। भगवान् ने स्वयं सुग्रीव को मित्र कहा, भगवान् ने स्वयं विभीषण को मित्र कहा क्योंकि मित्र भाव से इन्होंने भगवान् की उपासना की। तो सख्य भाव, वात्सल्य भाव, दास्य भाव, इसके साथ कान्ता भाव जैसे मैंने बताया आपको और आखीर में है शान्त भाव। शान्त भाव माने आत्मा के रूप में परमात्मा को मानना। जो आत्मा के रूप में परमात्मा को मानता है वह तो शरीर छोड़ कर परमात्मा में लीन हो जाता है। शरीर

छूटा तो जो अपनी आत्मा के रूप में परमात्मा की उपासना कर रहा है, वह सीधा परमात्मा में लीन हो जायेगा। जैसे जब भगवान् राम वन को जाते हैं तो रास्तें में अनेकों ऋषि मिलते हैं वहाँ पर वे शरीर छोड़ कर परमात्मा में मिल जाते हैं। शबरी के लिए भी इसी तरह से आया है कि -

**तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे।**

(रा० 3/36)

वह परमात्मा में लीन हो गयी लेकिन बहुत ऐसे भक्त हैं जो वात्सल्य भाव से, सख्य भाव से, दास्य भाव से और कान्ता भाव से प्रभु को मानते हैं, उनके लिए अलग-अलग रूप से मुक्ति की व्यवस्था है। जैसे गीद्ध के लिए आया है -

**गीध देह तजि धरि हरि रूपा।**

(रा० 3/32-1)

और उसका क्या स्वरूप है उस समय?

**भूषन बहु पट पीत अनूपा।।**

**X X X X X X X**

**स्याम गात बिसाल भुज चारी।**

अब उसका कौन सा रूप है इस समय? बिल्कुल नारायण का रूप। उसे कौन सी मुक्ति मिली? सारूप्य मुक्ति। जैसे भगवान् का स्वरूप है, ऐसा रूप उसने पा लिया और जितने राक्षस थे उनको भगवान् ने सालोक्य मुक्ति दे दी-

**राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।**

(रा० 3/20)

भगवान् राम और विभीषण बैठे हुए हैं, हनुमान और अंगद राक्षसों को मारते हैं और मार कर के फेंक देते हैं भगवान् के पास।

तुलसीदास जी लिखते हैं-

**महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पग गहि प्रभु पास चलावहिं।।**
**कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा।।**

(रा० 6/45-1)

राक्षसों को मारकर जब भगवान् के पास भेज देते हैं तो विभीषण पास बैठे हुए नाम बताते हैं कि यह अमुक राक्षस है, यह अमुक राक्षस है और भगवान् उसे अपने धाम में भेज देते हैं। पार्वती को शंका हो गयी कि राक्षसों को भगवान् अपने धाम भेज रहे हैं। कहा-हाँ। पूछा क्यों?

**उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर।।**
**देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी।।**

(रा० 6/45-2,3)

राम बड़े दयालु हैं, सोचते हैं कि किसी बहाने मेरे नाम तो ले रहे थे। अब मर कर के मेरे सामने आये तो इनको क्या करूँ? नरक में भेजूँ? भगवान् का स्पर्श जिसको हो जाये, वह नरक में कैसे जा सकता है? जैसे-

**सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए।।**

(रा० 1/16-2)

तुलसीदास जी ने लिखा कि अयोध्या का रहने वाला और सीता की निंदा करने वाला जो धोबी था उसको सालोक्य मुक्ति दी। बहुत ऐसे प्राणी हैं जो भगवान् की उपासना दूसरे ढंग से करते हैं, उनको उस प्रकार का फल मिलता है और उस अवस्था में हैं वे मुक्त। मुक्त माने वे पुनः लौट कर के मर्त्यलोक में नहीं आयेंगे और यदि आयेंगे तो भगवान् के पार्षद बन कर के आयेंगे। भगवान् जब कोई लीला प्रारम्भ करेंगे तो उन की इच्छा अनुसार वे इस संसार में आयेंगे लेकिन यहाँ की माया उनको नहीं लपटेगी, वे माया से मुक्त हैं। तुलसीदास जी लिखते हैं-

**हरि सेवकहिं न ब्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि विद्या।।**
**ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगवर।।**

(रा० 7/79-1,2)

कहते हैं कि भेद भक्ति बढ़ती रहती है, भक्ति में वहाँ कमी नहीं आती यदि वे संसार में आ भी जायें। आते कब हैं? इसके लिए किष्किन्धाकाण्ड में पढ़िये। वहाँ पर हनुमान जी को जामवंत समझा रहे हैं। क्या समझाते हैं?

**हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी।**
**निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।**
**सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि।।**

(रा० 4/26)

जो सगुण उपासना करने वाले भक्त हैं वो भगवान् के पार्षद बन कर आते हैं और भगवान् की लीला में एक पात्र का कार्य पूरा करते हैं। इसलिए सगुण उपासकों के लिए यह मोक्ष की व्यवस्था है जिसको सारूप्य, सायुज्य, सालोक्य और सामीप्य, ये चार प्रकार के नाम दिये गये हैं लेकिन कैवल्य मुक्ति वह पाता है जो शान्त भाव से आत्म रूप में परमात्मा की उपासना करता है। इसके लिए यजुर्वेद में आया है-

**पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजा-**
**पत्य व्यूह रश्मीन्समूह।**
**तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि-**
**योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।।**

(ईशा० 16)

जो ऐसा अनुभव करता है कि वह जो सूर्य मण्डल में पुरुष है वही मैं हूँ, जो आत्मभाव से परमात्मा की उपासना करने वाला, जो अपने

और ईश्वर में एकता की अनुभूति करने वाला है, उसको शान्त भाव की उपासना करने वाला कहते हैं। वह जब शरीर छोड़ता है तो परमात्मा में लीन हो जाता है और इस प्रकार की मुक्ति से परे कैवल्य मुक्ति है। योगियों का प्राप्तव्य कैवल्य मुक्ति है क्योंकि योगी सगुण उपासक नहीं हैं इसलिए उनके यहाँ कैवल्य मुक्ति है। ज्ञानी सगुण उपासक नहीं हैं इसलिए वे ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करते हैं। ब्रह्मनिर्वाण माने ब्रह्म में लीन हो जाना। ज्ञानी अपने आप को ब्रह्म में लीन कर देता है, वह अपना अलग अस्तित्त्व नहीं रखता। भक्त कहता है भगवान् से कि मैं आपमें लीन नहीं होना चाहता, मैं तो आपसे अलग रह कर के आपके मंगलमय स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ, आपकी सेवा करना चाहता हूँ, आपके साथ रहना चाहता हूँ। अब जब ऐसी उनकी अभिलाषा होती है तो भगवान् अपने भक्तों के लिए, उपासकों के लिए अपने रूप की कल्पना करता है, लोक की कल्पना करता है, अनेक प्रकार की वस्तुओं की कल्पना करता है। कल्पना माने संकल्प। संकल्प के आधार पर उसका निर्माण कर देता है इसलिए भगवान् गीता में कहते हैं-

**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**

(गीता 8/16)

मृत्युलोक से लेकर के ब्रह्मलोक तक गया हुआ प्राणी भी पुनः लौट कर आता है। आठ लोक हैं मनुष्य लोक से ऊपर और पाँच लोक मनुष्य से नीचे के हैं। मनुष्य लोक से नीचे है पशु लोक, पशु लोक से नीचे है पक्षी लोक, पक्षी लोक से नीचे है सरीसृप लोक, उसके नीचे है कृमि लोक और उससे भी नीचे है वनस्पति लोक अर्थात् वृक्षादि। ये पाँच योनियाँ जो हैं पाँच लोक हैं, छठवाँ मनुष्य लोक है और आठ लोक इससे ऊपर हैं। सबसे ऊपर ब्रह्मलोक, उसके बाद में प्रजापति लोक, इन्द्र लोक,

देवलोक, फिर पितृलोक, फिर गन्धर्व लोक, फिर यक्ष लोक और उसके बाद आता है पिशाच लोक। ये सब मनुष्य से ऊपर के हैं। आठ ऊपर हैं, पाँच नीचे हैं, एक मनुष्य है, इसको क्या कहते हैं-**चतुर्दशविधा भूत सर्गः**। सांख्य शास्त्र कहता है कि ये चौदह प्रकार के सर्ग हैं। ब्रह्मलोक से लेकर के वृक्षादि तक ये सृष्टि सर्ग हैं। जब मनुष्य गति को प्राप्त होता है तो उसको ब्रह्मलोक तक गिनते हैं। जैसे भगवान् ने गीता में कहा है-

**ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था।**

(गीता 14/18)

लेकिन ब्रह्मलोक से आकर पुनः इसी पृथ्वी पर गिरता है, मुक्त नहीं होता।

**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**

(गीता 8/16)

भगवान् कहते हैं जो ब्रह्मलोक से भी परे चला गया है और जिसने मुझे प्राप्त कर लिया है अब वह लौट कर के पुनः इस आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता। उसको मुक्ति कहते हैं। अब वह ब्रह्मलोक में जाकर के किस रूप में रहता है यह उस पर निर्भर करता है कि वह ब्रह्म में लीन होता है या ब्रह्म से अलग रहता है। हमारे यहाँ पुराणों में उसके लिए साकेत लोक, गोलोक, वैकुण्ठ लोक, शिवलोक आदि नामों का प्रयोग किया गया है। उन लोकों में जाकर के अपनी निष्ठा के अनुसार रहता है। जिसको शिवभक्त शिवलोक कहते हैं उसी को कृष्ण भक्त गोलोक कहते हैं, वैकुण्ठ कहते हैं, उसी को रामभक्त साकेत कहते हैं। है एक ही परन्तु उसके नाम अलग-अलग हैं। अलग नाम क्यों हैं? अपनी निष्ठा के अनुसार। अलग-अलग निष्ठायें हैं, परमात्मा एक ही है केवल अलग-अलग उसके नाम दे रखे हैं।

किस प्रकार से इस ब्रह्मलोक से परे जायें? यह साधना मनुष्य के लिए करनी आवश्यक है। उसके लिए भगवान् ने दो प्रकार की बातें बताईं हैं- एक निर्वाण और दूसरा ब्रह्मनिर्वाण। निर्वाण क्या है और ब्रह्मनिर्वाण क्या है? बौद्ध जो हैं ये निर्वाण मानते हैं, ब्रह्मनिर्वाण नहीं मानते क्योंकि इनके यहाँ concept ही नहीं है ब्रह्मनिर्वाण का। इसीलिए ये भारत से धकेल कर बाहर कर दिये गये। ब्रह्मनिर्वाण का इनको बोध नहीं है और वहाँ तक जाना भी नहीं चाहते। निर्वाण में ही लपटे रहना चाहते हैं। निर्वाण और ब्रह्मनिर्वाण में क्या अन्तर है? इसका एक उदाहरण दे कर के मैं आपको समझाऊँ। जैसे आप अपने घर में बैठे हैं और यदि घर से बाहर जाना चाहते हैं तो क्या आपको किसी से आज्ञा लेने की आवश्यकता है? नहीं। आप अपने घर का दरवाज़ा खोलिये और बाहर जाइये। बाहर कहाँ तक आप जा सकते हैं? जहाँ तक आपके देश की सीमा है लेकिन यदि देश से बाहर जाना हो तो क्या अपनी रुचि से जा सकते हैं? नहीं, देश से बाहर जाने के लिए आपको permission लेना पड़ेगा। किससे लेना पड़ेगा? इस देश की जो सरकार है उसकी आज्ञा के बिना आप सीमा पार नहीं कर सकते और अपने घर से बाहर जाने के लिए किसी की इजाजत लेने की जरूरत नहीं है आपको। गीता यह कहती है कि यदि तुम अपने शरीर से मुक्त होना चाहते हो फिर तो किसी से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं है, किसी की उपासना की ज़रूरत नहीं है। ज्ञान के प्रकाश में तुम अपने शरीर से मुक्त हो सकते हो लेकिन शरीर से मुक्त हो कर केवल ब्रह्मलोक तक जा सकते हो, उससे आगे नहीं जा सकते। जैसे हमारे ब्रह्माण्ड में चौदह लोक हैं ऐसे जितने ब्रह्माण्ड हैं उन सभी में चौदह लोक हैं। ब्रह्माण्ड एक नहीं है। ब्रह्माण्ड का अर्थ है बड़ा अण्डा। उस बड़े अण्डे के अन्दर यह सारा चक्र है और ऐसे कितने

ब्रह्माण्ड हैं उनकी गिनती नहीं है। भुशुण्डी जी कहते हैं कि जब हमने परमात्मा के उदर में प्रवेश किया तो-

**अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका।।**

(रा० 7/79-2,3)

अनेकों ब्रह्माण्ड देखे और हर एक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा हैं, विष्णु हैं, शिव हैं और हर एक ब्रह्माण्ड का अपना एक सृष्टिक्रम है। इन सभी ब्रह्माण्डों की विविध प्रकार की सृष्टि है।

**कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा।।**
**अगनित लोकपाल जमकाला। अगनित भूधर भूमि बिसाला।।**

यह भुशुण्डी जी बताते हैं उत्तरकाण्ड में और आज का वैज्ञानिक इसको प्रमाणित कर रहा है कि there is not only one universe but there are numerous universes और एक ब्रह्माण्ड की अन्तिम सीमा जो है उसको ब्रह्मलोक कहते हैं। यदि आप इस शरीर से मुक्त होते हैं तो ब्रह्मलोक तक जा सकते हैं लेकिन ब्रह्मलोक से परे यदि जाना है तो आपको मालिक से इजाज़त लेनी पड़ेगी और मालिक कौन है? परब्रह्म परमात्मा इसलिए भगवान् ने क्या कहा?

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।**

माया की सीमा कहाँ तक है? ब्रह्मलोक तक। ब्रह्मलोक तक माया की सीमा में है और ब्रह्मलोक से परे जो है वह परमात्मा का साम्राज्य है। यदि आप इस माया की सीमा से पार जाना चाहते हैं तो परमात्मा की आज्ञा के बिना नहीं जा सकते, परमात्मा के प्रति समर्पण के बिना नहीं जा सकते। आप लोग समझ गये होंगे कि मोक्ष क्या है और उसके लिए उपाय क्या है? ज्ञान के प्रकाश में आप अपने शरीर से मुक्त

हो सकते हैं लेकिन परमात्मा को समर्पित हो कर के ही आप ब्रह्माण्ड से परे जा सकते हैं। भगवान् ने गीता में मोक्ष का साधन बताया -

**भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।**
**ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।**

(गीता 18/55)

भक्ति के द्वारा मुझे पूर्ण रूप से जान करके, मैं जैसा, जिस महिमा वाला, जो कुछ हूँ, तब मनुष्य मुझे जानता है, देखता है। तो ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करने का उपाय है परमात्मा की भक्ति, अनन्यता लेकिन भक्ति वह जो ज्ञान-वैराग्य से युक्त है। तुलसीदास जी ने क्या लिखा?

**श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।**
**तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।**

(रा० 7/100)

वह भक्ति नहीं जिसका आज कल प्रचार हो रहा है। जिसमें-"मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत" की कल्पना है, वह भक्ति है। भगवान् के विराट् रूप की उपासना के द्वारा मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सकता है। उस परम पद को प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है, इसी को मुक्ति कहते हैं। आप लोग समझ गये होंगे कि जो परमात्मा में लीन नहीं होना चाहता, अपना individuation अलग रख के परमात्मा की उपासना करना चाहता है, वह भी परमात्मा के दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। जो दिव्य लोकों मे रहने वाले प्राणी हैं उनका शरीर पंचभौतिक नहीं होता। वह दिव्य शरीर होता है। जैसे परमात्मा का दिव्य शरीर होता है वैसे ही उनका भी दिव्य शरीर होता है-

**चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।**

(रा० 2/120)

उस शरीर को प्राप्त कर लेते हैं। उनका संकल्पमय शरीर होता है जिसको भावमय शरीर कहते हैं। वे भावात्मक शरीर में रहकर के परमात्मा से प्यार करते हैं, परमात्मा का दर्शन करते हैं। हैं वे मुक्त। वे इस ब्रह्माण्ड से परे चले जाते हैं, लौट कर के फिर जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आते। वे भी मुक्त कहे जाते हैं लेकिन उनमें और जो ब्रह्मलीन हो गये उनमें क्या अन्तर होता है? अन्तर केवल इतना ही है कि उनका जीव भाव, व्यष्टि भाव बना रहता है भगवान् के भक्त के रूप में और जो ब्रह्मलीन हो जाते हैं उनका जीव भाव समाप्त हो जाता है। व्यष्टि भाव के होते हुए उसको बोध है कि उसका अलग अस्तित्त्व काल्पनिक है। यह नहीं कि वह अज्ञानावस्था में है, वह सब जानता है। तत्त्वतः वहाँ भगवान् के सिवाय कुछ नहीं होता इसीलिए वह भी मुक्त है।

मुक्ति के पाँच भेद आज मैंने आपको बताये। मुक्ति के इस स्वरूप को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए। धर्म का अनुष्ठान तीन दृष्टियों से होता है-सद्य फल प्राप्ति के लिए, स्वर्ग प्राप्ति के लिए और परमात्मा की प्राप्ति के लिए। जो सद्यफल प्राप्ति के लिए परमात्मा की अर्चना करते हैं जैसे आप सवेरे उठ कर शंकर जी को जल चढ़ाते है, माला फेरते हैं लेकिन उसके बदले में आप चाहते क्या हैं? यही कि मुझे धन मिल जाये, मेरे बाल-बच्चे सुखी रहें, मेरा परिवार सुखी रहे, यह सद्यफल है यानी इसी लोक में फल प्राप्ति के लिए धर्म-कर्म करते हैं तो आपको उसका फल मिलेगा। दूसरा, आप कहते हैं कि नहीं यह संसार तो नाशवान है और आप स्वर्गीय सुख की प्राप्ति के लिए कर्म करते हैं और तीसरा वह है जो आप परमात्मा की प्राप्ति के लिए करते हैं।

मैंने आज आपको मुक्ति का सही स्वरूप बताया। इन तीन

व्याख्यानों में आपने जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय, मृत्यु के बाद और मुक्ति इन तीन विषयों पर बातें सुनी। जो कुछ आपने सुना और समझा, उस पर मनन कीजिये फिर मिलेंगे, फिर चर्चा करेंगे।

**हरिः ॐ तत्सत्।**




दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : 01733-266170